जिद्दी

प्रताप बी० ए० एल-एल बी०

प्रकाशक

चौधरी एण्ड सन्स
बनारस-१

प्रथम संस्करण : विजयादशमी '५६

मूल्य : तीन रुपया

मुद्रक
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय
लहरतारा
बनारस—४

यों ही कुछ

मैं जिद्दी हूँ—

जो कहता हूँ उसे जान पर खेलकर पूरा करता हूँ।

मेरे स्वप्न सत्य होते हैं।

मेरी कल्पनायें यथार्थ होती हैं।

याद रहे—

अपनी जिद के बजनी घन की करारी चोट से सामाजिक कुरीतियों के किले की सुदृढ़ दीवारों की ईंट-ईंट ढहाकर दम लेता हूँ।

ईंट से ईंट बजा देता हूँ और समाज के ढीले-ढाले, पुराने पड़ गये ढब-ढांचे देखते-देखते चरमरा कर बैठ जाते हैं और सारा का सारा किला धूल में मिल जाता है।

सारा मलबा साफ कर डालता हूँ। नापाक नींव की गहराई में उतर कर इञ्च-इञ्च जमीन की सफाई कर डालता हूँ।

इतना ही नहीं—

नयी जमीन पर नयी नींव खोद डालता हूँ; नये नक्शे के आधार पर नयी इमारत का शिलान्यास समारम्भ करता हूँ।

और—

नये-नये शिल्पियों व श्रमजीवियों के श्रम और सहयोग से एक नये भवन का निर्माण करने लग जाता हूँ।

और जब वह इमारत बनकर तैयार हो जाती है तो उसमें रहने के लिये आमंत्रित करता हूँ:—

युग के उखड़े हुये लोगों से बने
सर्वहारा समाज के
जिद्दी प्राणियों को।

प्रो० विजयदेव नारायण शाही

को सप्रेम !

ज़िद्दी

ज़िद्दी मुझे हर कोई नहीं कहता। फिर अगर हर कोई कहने भी लगे, तो कहे, खुशी से कहे। किसी का मुँह तो पकड़ा नहीं जा सकता। अपना ढब-ढाँचा, अपनी बनावट सब लोगों की तरह भी है और सबसे निराली भी। अपने को रत्ती भर भी इन तमाम बातों की परवा नहीं। सोचिये, परवा हो भी तो कैसे ? हर स्थिति का डटकर, हँसी-हँसी सामना करने को ताल ठोंक कर तैयार रहता हूँ। मुट्ठी भर कच्चा चना चबाकर पहाड़ तोड़ने की हिम्मत रखता हूँ। अँगुली भर धूल फाँक कर सो रहूँगा लेकिन रीढ़ की हड्डी इञ्च भर भी नहीं झुकेगी। माथे पर जरा भी शिकन नहीं आयेगा और सुबह किसी के सामने जाकर दाँत नहीं चियारूँगा। इसलिये किसी के कहने-सुनने की तरफ से मैं बेगम बना रह सकता हूँ मगर हर इन्सान में आज, अफसोस, वह जोर, जीवट और जोशे-जवानी नहीं।

हाँ—

जो मुझसे मुहब्बत करते हैं, जो मुझे सर-आँखों पर रखते हैं, जो मेरी दुर्बलताओं को दुलराया करते हैं, जो मेरे हमदर्द हैं, जो अपनी आँखों में मेरे लिये सम्वेदना का समुन्दर छिपाये रखते हैं,

जो मेरी सूरत देखकर मुस्कुरा देते हैं, जो मेरा नाम सुनकर कह उठते हैं—जो भी हो, आदमी अपने ढङ्ग का एक है, जो मुझे बात का धनी, वायदे और धुन का पक्का तथा लगन व लगोंट का सच्चा इन्सान समझते और मानते हैं;

और—

जो मुझे नफरत की नजर से देखते हैं—मेरे जैसे जीव तो बनाना छोड़कर बिगाड़ना जानते ही नहीं—हाँ, अनायास लोगों के मामलों में पड़ जाया करता हूँ, इस वजह से शायद स्वार्थवश कोई मुझसे नाराज हो जाता हो तो बात दूसरी है और इसीसे जिद्दी, ढोंगी, झगेड़ू, असफल, अवसरवादी, बहुत कुछ भली-बुरी बातें वे कह दें और इसके लिये, भगवान जानता है, मुझे उनसे ज़रा भी कत्तई शिकायत नहीं;

वे सभी मेरे दोस्त हैं और हैं जिगर के टुकड़े।

पत्थर मारने वाले हों तो क्या ?

पुष्प की मालायें पहनाने वाले हों तो क्या ?

अपने लिये दोनों बराबर और ऐसी बात इसलिये कि गुमराह लोगों को भी राह रास्ते लगाना मैं जानता हूँ और राह रास्ते लगे हुये लोगों के मस्तक पर चन्दन और तिलक भी लगाने में मुझे लाज नहीं लगती।

प्रेम और घृणा के चश्मे पहने हुये लोगों को आपने देखा लेकिन आप चाहें तो आप की आँखें भी वैसी ही हो जायें जैसी मेरी क्योंकि मेरी आँखों की रोशनी को चश्मे की जरूरत नहीं पड़ती। विश्वास कीजिये, दुनियाँ में ऐसे लोग काफी तादाद में हैं जिनकी आँखें मुझसे भी ज्यादा मजबूत हैं, जो मेरे बराबर या कुछ कम या कुछ ज्यादा बेगम, बेफिक्र और बेलौस हैं। इतना ही नहीं, वह वक्त दूर नहीं कि वे एक दिन मुझसे और मेरे जैसे अनेकों से बहुत-बहुत दूर आगे बढ़

जायँगे और ऐसे ही लोगों में से एक तो हैं आजकल मिनिस्टर और दूसरे हैं जिला अदालत में प्रैक्टिस करनेवाले एक वकील।

मुझे याद है, ये दोनों सज्जन कभी-कभी खुश होकर और कभी-कभी बिगड़ कर मुझसे कहते—"बड़े जिद्दी हो।"

कहने का गरज यह कि मुझे जिद्दी कहते हैं मेरे दोस्त भी, दुश्मन भी और वे लोग भी जो न मेरे दोस्त हैं और न मेरे दुश्मन और संयोग से मेरे मिनिस्टर साहब तो इसी कोटि में आते हैं—वकील साहब नहीं क्योंकि वह ज़रा अपने गहरे दोस्तों में से रह चुके हैं। मिनिस्टर साहब से तो ज़रा दूर की मुलाकात है। एक ही जहाज से वह भी सफर कर रहे थे और मैं भी लेकिन हम दोनों मुसाफिर नहीं थे। वह जहाज के कैप्टेन थे और मैं था उसका एक मामूली-सा माँझी।

कोई बहुत ज्यादा दिन नहीं हुए। यही कोई चार साल पीछे की बात होगी। बात मजेदार नहीं पर जानदार जरूर है और जिद्दी इन्सान की कहानी के सिलसिले में उसकी जिद के छिटपुट नमूने भी ऐसे नहीं, यकीन मानिये, कि आपको नाक सिकोड़ना पड़े या दस बीस पन्ने छोड़कर कहानी की कड़ी पकड़ने के लिए किताब के पन्ने इधर से उधर उलटने पड़ें।

लखनऊ शहर: मिनिस्टर का बँगला: सुबह-सुबह बेरोकटोक अपने दो साथियों के सङ्ग मिनिस्टर सा'ब के सामने पहुँच ही तो गया। मस्तक के पास तक हाथ उठे और उनकी मधुर मुस्कान ने मेरे अभिवादन को सहर्ष स्वीकार किया। सोफा-सेट मिला बैठने को। फिर काम की बातें शुरू हुयीं। लेकिन इतना तेज मुझे भागना नहीं चाहिए। अपने दोनों दोस्तों को आपसे मिला दूँ। सिलसिले से बहक जाना तो जरूर यह कहा जायगा लेकिन मजबूर हूँ। इन दोनों दोस्तों को 'इन्ट्रोड्यूस' कराये बगैर मुझसे, सच कहता हूँ, यानी मेरी लेखनी से ही सही—एक 'पग' आगे बढ़ा नहीं जा रहा है।

जुमा-जुमा आठ दिन ही हुये कहा जायगा, इन दोनों दोस्तों को एम० एल० ए० चुने गये क्योंकि चुनाव के दो तीन महीने की ही बात है यह सब। याद रहे, इनके बारे में भी सुनायी जाने वाली दास्तान कम दिलचस्प नहीं है।

सिन, सूरत-शकल, बातचीत, उतार-चढ़ाव, दमखम, बनावट, व्यक्तित्व सब कुछ, अपना और अपने इन दोनों दोस्तों का बयान किये बिना अपना मन मानता ही नहीं। क्या बतायें, मन बड़ा ही चाण्डाल होता है!

सूरत शकल तो मेरी भी वैसी कोई खास नहीं लेकिन सिन की बात कुछ बेढङ्गी ज़रूर है। इसका 'एस्टिमेट' इसी से आप कर लें कि मेरे कई बच्चे हैं, मेरे सिर के आसमान पर चाँदी के तारे बहुत ही बड़ी तादाद में उग आये हैं। आखिर ज्यादा उमर के लिये और कौन-सा पक्का सबूत दिया जाय? लीजिये दूसरा सबूत सही, दुनिया की दूसरी बड़ी लड़ाई शुरू होने के दो चार साल पहले मैं ग्रेजुयेट हो चुका था। यह भी नाकाफी है? अच्छी बात है। तीसरा सही। सन् ३० के आन्दोलन में मुझे नाबालिग समझकर जगलों में, शहर से बहुत दूर, पुलिस छोड़ आया करती थी।

अब मेरे दोनों दोस्तों की सिन, सूरत-शकल को मुलाहिजा फरमायें। दोनों बिलकुल नौजवान, युनिवर्सिटी से ताजे-ताजे निकले थे पोस्ट ग्रेजुयेट होकर। दोनों के कद और डील-डौल में जमीन आसमान का फरक था। लेकिन इस किस्म का फरक उनके व्यक्तित्व के अन्य ब्योरे की बातों में बराबर कम होता गया था। दोनों की उमर ही ले लीजिये। था फरक लेकिन उतना ज्याद नहीं जितना उनके डीलडौल में। शरीर के रङ्ग रूप वर्ण में तो उन्नीस-बीस का ही मामला था। इस तरह दोनों के बाह्य-व्यक्तित्व की बनावट का एक तत्व ऐसा था जो दोनों को एक दूसरे से दूर रखता था—यानी एक था भारी भरकम,

लहीम-शहीम, छै फीट के करीब का पठ्ठा मुगलिया जवान-सा और दूसरा था सींकिया पहलवान और नाटे कद का। लेकिन उसी का दूसरा तत्व ऐसा भी था जो दोनों को एक दूसरे के करीब भी कर देता था और वह और कुछ नहीं महज दोनों के अधरों पर सदैव खेलने वाली मधुर-मधुर मुस्कान।

एक की आदत थी—हर खासोआम से, परिचित-अपरिचित से, पहले ही पहले, अपने आप, बिना इन्तजारी किये, देखते ही, हाँथ उठा, धीरे से मुस्कुराकर सलाम करने की और दूसरे की आदत थी—विनय एवं नम्रता की सजीव मूर्ति बनकर मधुर वाणी बोलते, हँसते, मुस्कुराते हुये लोगों को अभिवादन करने और मिलने जुलनेवालों पर अपने मन के मृगछौने वाले भोलेपन की छाप डाल देने की। मेरे इन दोनों दोस्तों की इस 'कामन' विशेषता के पीछे कुल दो सतर का एक इतिहास है। और वह यह कि दोनों सुयोग्य पिता की सन्तानें हैं।

एक दिन की बात है कि दोनों दोस्त एक दूसरे को देखकर मुस्कुराये। आँखों से आँखें मिलीं, दिल से दिल मिला और दोनों गले से गले मिले। दोनों के आन्तरिक व्यक्तित्व का साम्य दोनों को एक दूसरे के समीप लाने में सफल रहा। दोनों के मन में देश सेवा एवं समाज सेवा करने की उमंगें ज़ोर मार रहीं थीं। दोनों एक-एक ग्यारह हुये। चुनाव आने आने तक दोनों दिल खोलकर जनता की सेवा करते रहे और इस सेवा का मेवा मिला उन्हें यह कि दोनों के दोनों एम० एल० ए० चुन लिये गये। मुझसे भी जो कुछ बन पड़ा, किया, और दोनों को एक साथ 'जुखरने' में काफी अर्से तक कामयाब भी रहा। बीच बीच में मैं ज़रूर महसूस करता था कि दोनों दो विभिन्न दिशाओं में जाना चाहते हैं।

अच्छा, अब इन नाबालिग दोस्तों से मेरी मुलाकात और दोस्ती

की कहानी सुनिये, जो कम मजेदार नहीं है। स्थानीय राजनीतिक क्षेत्र में मेरे दूध के दाँत बहुत काफी तादाद में टूट चुके थे और नये-नये निकल रहे थे और मेरे इन दोनों दोस्तों के दो-दो एक-एक ही दाँत दूध के मुश्किल से टूटे थे। यों तो मैं अपने बुजुर्गों के सामने 'माइनर' ही था लेकिन इनकी नज़रों में बालिग ज़रूर हो गया था। ये दोनों मुझसे मिलकर बहुत न खुश हुये! इतने खुश हुये, इतने खुश हुये कि जिसकी कोई हद नहीं। इनसे मेरी दोस्ती भी खूब न बढ़ी! इतनी बढ़ी, इतनी बढ़ी कि देखने वालों की आँखें बिना बीमार पड़े ही पट-पट करके बैठने लग गयीं। लोग व्यङ्ग कसते—खूब राम-लक्ष्मण की जोड़ी बनी है और मुझे बन्दर न कहकर हनूमान बना देते। मैंने भी सोचा, चलो अच्छा हुआ, दोनों उत्साही नौजवान हैं, साधन सम्पन्न हैं और मुझे भी मोर्चा लेना था बड़े से बड़े घाघ लोगों से स्थानीय राजनीति के रङ्गमञ्च में। लोग कहते—दोस्त! शतरञ्ज के अच्छे मुहरे मिल गये तुम्हें। अब जरूर मात दे दोगे। मगर इन्हें मैंने कभी भी इस ढङ्ग से इस्तेमाल ही नहीं किया और न करना ही चाहता था क्योंकि ये उस वक्त केवल कच्ची मिट्टी के खिलौने थे। मैं इन दोनों को मुहब्बत भी करने लग गया था। यही तो मुश्किल की बात हो गयी थी। हाँ, जिस सङ्गठन से मुझे प्यार था, उसमें व्याप्त बुराईयों को इनकी मदद से जरूर दूर किया चाहता था। उन्हें आगे बढ़ने को बराबर उत्प्रेरित भी करता रहता था लेकिन गलत तरीकों को अपना कर नहीं। जमाना यह है कि तरीके के सही और गलत के झमेले में जो पड़ा, वह जिन्दगी भर बाबाजी का बाबाजी ही रह जाता है। त्याग, योग्यता, सेवा, लोकप्रियता, कर्मठता, सच्चाई, ईमानदारी आदि के बल पर लक्ष्य प्राप्ति एक बात है और बैसाखी लगाकर स्वर्ग के सिंहासन पर भी आसीन हो जाना दूसरी। पहला टिकाऊ है किन्तु साधना से सुलभ, दूसरा क्षण-भंगुर है और छल-बल-कल से प्राप्य। खैर, इन तमाम बातों से क्या? मेरे दोनों

दोस्त तब भी अपने थे और अब भी अपने हैं। मेरे लिये, सच कहता हूँ, यह कम खुशी की बात नहीं कि, अब ये मेरे जैसे एक नहीं, एक हज़ार को रास्ता दिखा सकते हैं। जो भी हो, दोनों होनहार हैं, तरक्की पसन्द हैं और आशा है कि आने वाले जमाने में अपने आचरण द्वारा अपनी प्रगति का पूरा-पूरा परिचय देकर लोक-सेवा करते हुये उस जगह जा पहुँचने की कोशिस करेंगे, जहाँ पहुँच कर इन्सान ईश्वर और जानवर आदमी बन जाता है।

अभी-अभी इसके पहले मिनिस्टर 'इन्टरवियू' की चर्चा कर रहा था कि एक बात में से दूसरी बात फूट निकली। जी, तो मिनिस्टर साहब बड़ी ही तर व ताज़ी तबीयत के आदमी थे, उनकी क्या तारीफ करूँ। हँसते कम लेकिन मुस्कुराते ज्यादा थे और बस ऐसा लगता था जैसे फूल झड़ रहे हों।

कुछ ऐसा मामला ही आकर फँस गया था अपना कि उनके सहयोग की नितान्त आवश्यकता आ उपस्थित हुयी। अतः दोनों दोस्तों के साथ मुझे उनके पास तक जाना पड़ा। बातें हुयीं, उन्होंने आश्वासन दिया और इससे ज्यादा कर भी क्या सकते थे। मेरा व्यक्तित्व ही उन दिनों कुछ ऐसा विवादग्रस्त बन चुका था कि उनके बहुत-बहुत जोर लगाने पर भी मैं असफल रहा। स्थानीय राजनीति में एक दल-विशेष में व्याप्त संगठनात्मक प्रतियोगिता के कारण ऐसी विरोधी भावना मेरे खिलाफ कुछ बुजुर्ग विरोधी दोस्तों के दिलों में जड़ जमा चुकी थी कि वह अब तक फल-फूलकर पौधे की शकल धारण कर चुकी थी। और मेरे नन्हें-मुन्ने कमसिन एम० एल० ए० द्वय की कलाईयाँ अभी इतनी नाजुक व नरम थीं कि उन बेचारों से द्वेष का वह नन्हा-सा पौधा उखाड़ कर फेंका न जा सका। एक 'टाट-भात' के लोगों ने मेरा विरोध किया और उस वक्त मुझे अवश्य दुःख हुआ लेकिन आज मैं उन बुजुर्ग विरोधी दोस्तों को लाख-लाख शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ क्योंकि उस वक्त कामयाब

हो जाने पर आज मेरी जो बुरी गत हुयी होती कि मैं उसे कह नहीं सकता। उस वक्त जो कुछ हुआ, वह बहुत अच्छा हुआ। काश! वह काम हो गया होता तो कई बातें होतीं और कई न हो पातीं। जैसे-बीते चार सालों से जो मेरी जिन्दगी को एक दम नई राह मिली, नई दिशा मिली और मेरे आन्तरिक व्यक्तित्व के शरीर का कायाकल्प हुआ, वह तो कम से कम जिन्दगी की उस राह पर चलते हुये तो असम्भव ही था। फिर उस राह पर चला होता तो कड़ी मशक्कत से चूर होकर इस दुनिया से कभी कूच कर गया होता। मेहनत करने से घबड़ाता नहीं लेकिन इधर तीन चार साल से 'ब्लड प्रेसर' की ज़रा मेहरबानी हो गयी है।

अब, ज़रा मिनिस्टर महोदय से हुयी मेरी दो-दो बातों पर ध्यान दें—

"सब एक होकर तुम्हारी उम्मेदवारी का समर्थन करते तो कितनी बढ़िया बात थी। आसानी से कामयाबी मिल जाती। क्या बतायें? उस बूढ़े बुजुर्ग आदमी के पीछे फिजूल ही हाथ धोकर पड़े रहते हो।"

"नहीं भगवन्! मैं कुछ नहीं करता। वह अपनी गलती मानते नहीं। गलत तत्वों के सहयोग से सार्वजनिक जीवन पर प्रेत बनकर छाये रहना चाहते हैं। मनमानी घरजानी अपने को सह्य नहीं।"

"कुछ नहीं जी, तुम्हीं लोगों की सारी गल्ती है।"

"आप श्रेष्ठ हैं जो भी कहें...."

"बड़े जिद्दी हो, यही तो बहुत बड़ी कमी है। और तुम्हारे साथी भी तो सभी एक से एक लड़ाकू और जिद्दी...."

"कोई जिद की बात कभी शायद ही मेरी तरफ से शुरू हुयी हो।"

"नहीं-नहीं, मुझे खबर है। तुम बहुत बड़े जिद्दी हो। समझौते की बात तुम्हें अच्छी ही नहीं लगेगी। बस एक दूसरे की शिकायत

करो, क्या कहें ? अच्छा, अपना नेता मान लो उन्हें। बस छुट्टी मिली। तुम उनके, वह तुम्हारे।"

"वह बुजुर्ग हैं, पैर पड़ सकता हूँ किन्तु उनकी बौद्धिक गुलामी कबूल नहीं। उन्हें हटाइये, आपसे जो बन पड़े, कर दें।" इतने में फोन से उन्हें प्रधान मंत्री के बँगले पहुँचने का बुलावा आ गया। बात पूरी न हो सकी। हम सभी हट बढ़ गये।

आज करीब चार-पाँच साल के बाद अनायास ही ये सारी बातें मेरे मानस-पटल पर एक ओर से आकर, न्यूजरील की तरह, मेरी स्मृतियों को जगाती हुयीं दूसरी ओर न जाने कहाँ चली जा रही थीं। और मैं स्टेशन प्लैटफार्म पर वेटिङ्ग रूम के सामने पड़ी बेंचपर बैठा हुआ विचारों में तल्लीन था।

बात यह हुयी कि मेरी देवी जी ने कहा कि शामवाली गाड़ी से बनारस चले जाना मगर आने-जाने के मामले में मेरा प्रोग्राम कुछ ऐसा 'रिजिड' होता है कि जो तै हो गया, सो तै हो गया और उसमें साधारण परिवर्तन भी मेरी बहुत बड़ी आन्तरिक परेशानी का कारण बन जाता है। मैंने उन्हें कोई बढ़ावा दिया नहीं। इसलिये हँसती हुयी वह 'जिद्दी' कहकर चुप हो रहीं और मैं चला आया स्टेशन। यहाँ गाड़ी काफी लेट थी किन्तु दूसरी कोई मेलट्रेन आयी और दूसरी तरफ के लिये छूटी और उसी के मुसाफिर आ-जा रहे थे। बस उसी वक्त मुझे दोनों एम० एल० ए० दोस्त दिखायी ही तो पड़ गये। दोनों दिल खोलके मिले और शायद काफी अरसे के बाद हम लोग मिल रहे थे। पन्द्रह बीस महीने के बाद ही शायद। बातें होने लगीं लेकिन जैसे इनकी बातों में, वह पुरानी चीज़, वह पुरानी मुहब्बत, आत्मीयता, अपनापन, ढूँढ़ने से भी नहीं मिल रहा था। कलई-मुलम्मा ज्यादा नज़र आ रहा था। साथ ही साथ मेरे प्यारे दोस्त साहबान कुछ सकुचा से भी रहे थे। उनकी निगाहों को न जाने क्या

हो गया था कि वे मेरी निगाहों से आ मिलने में सकपका रही थीं। उनकी आँखों को धर्म-संकट में पड़ा देखकर मेरा मन स्वयं भीग गया। सोचा, जान छोड़ो यारों की। जाँय ये लोग। अभी कितनी-कितनी जरूरतें लेकर कितने-कितने लोग इनकी बाट जोह रहे होंगे। खैर, दुआ-सलाम, प्रणाम-आशीस के पश्चात् जल्दी-जल्दी हम लोग एक दूसरे से अलग हुये। कोई नेता-मिनिस्टर मेल-ट्रेन से पास हो चुके थे। उन्हीं को माला पहनाने आये थे आप लोग।

तदनन्तर मैं अपनी पुरानी जगह पर जाकर पुनः बैठ रहा कि क्षण दो क्षण बाद ही कोई और साहब आकर मेरे कन्धे पर मजे का एक धौल जमाते हुये बोले—

"कहो जनाब? यहाँ कैसे।"

देखा, तो पीछे खड़े हैं माधव बाबू। मेरे मुँह से यकायक निकल पड़ा—

"खूब रही भई। आज जैसे पुराने दोस्तों से मिलने का दिन ही आ गया है। अभी-अभी एम० एल० ए० द्वय मिले थे और अब आप।"

"हाँ, अभी देखा है मैंने भी। खैर, अच्छे तो रहे?"

"जी रहा हूँ।"

"अभी गाड़ी में कुछ देर है। तब तक आओ गप-शप किया जाय। काफी दिनों के बाद मिले हो। चलो, उठो, क्या बैठे हो आलसी की तरह।" कहते हुये हाथ पकड़ कर खींच ही लिया और मैं उठकर उनके साथ प्लैटफार्म पर टहलने लगा।

आपसी बातें होने लगीं। वे ही बोले—

"व्यर्थ में जिद की वजह से तुमने अपना जमा-जमाया काम छोड़ दिया। आखिर हम लोग भी तो जी रहे हैं? अपनी भी घर गृहस्थी है या कोई साधू-संन्यासी हैं। लेकिन जिद ही तो है तुम्हारी....

हाँ, सुनो, तुम बीच में कहीं भूदान वगैरह के भी चक्कर में पड़ गये थे ?"

"जी, बहुत मामूली तौर पर...."

"वही तो मैंने कहा कि भला तुम्हारा वहाँ कहाँ गुजारा ! अच्छा किया वर्ना लँगोटी लगानी पड़ती। क्या मज़ाक की बात है ! कल-पुर्जों की मशीनी दुनिया में यह सब नया-नया प्रयोग ! सोचो, वन-मानुष ही कालान्तर में इन्सान बना। घिसते-घिसते उसकी पूँछ घिस गयी। तदनन्तर उसका मानसिक विकास हुआ। उसने उछलना-कूदना छोड़ा, पैरों पर खड़ा होकर धीरे-धीरे वह चलने का अभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे उसने उन्नति की और आज वह सभ्यता की उच्चतम शिखर पर पहुँच रहा है।"

"ज़रूर कहियेगा ऐसा। एटम, हाइड्रोजन, कोबाल्ट मानव-मानस के नैपुण्य के साक्षी हैं न ?" कहकर मैंने जरा व्यंगात्मक ढंग से मुस्कुरा दिया।

वह कम काँइयाँ न थे। तुरन्त ताड़ लिया। बोले—

"अच्छा ही किया।" और लगे पीठपर झूलते हुये मेरे कुर्ते को उघाड़ कर कुछ गौर से देखने। मैंने सोचा, क्या मुसीबत आयी पर-मात्मा ? मैं अवाक रह गया। बोला—

"भई, क्या बात हुयी जो आपको इतनी सारी मेहनत करनी पड़ रही है ? कहिये, कुर्ता ही उतार दूँ।"

"नहीं, नहीं, कोई बात नहीं। योंही कुछ देख रहा था।"

"आखिर मालूम तो हो कि जनाब क्या मुआयना कर रहे थे ?"

"कुछ नहीं जी, सिर्फ यही देख रहा था....लेकिन तुम्हारी तो पूँछ करीब-करीब सब झड़ चुकी है। किसी से सुना था, तुम्हें पूँछ उग आयी है।"

चुप होकर सोचा, यह बात है, 'डारविन का डेविल' इनके सिरपर चढ़कर बोल रहा है। अच्छा! बोला—

"डारविन ले डूबेगा बड़े भाई आपको। आपके जैसे सोचनेवालों को और आपके जैसे लोगों से बनी इस दुनिया को एक दिन। और वह दिन करीब है। हिरोशिमा का करारा तमाचा बैठा लेकिन लोग भूल गये। क्यों? 'एकोऽहं बहुस्याम्' झूठ है? प्रसादजी की वे पंक्तियाँ भी गलत है—

"नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।"

बड़े भाई, हम लोग कहाँ जा रहे हैं, इसका पता नहीं है किसी को। आने वाले सर्वनाश को रोकने से रहे बल्कि उसी ओर हम बढ़ते जाने में अपना गौरव समझ रहे हैं।"

इतना ही कहकर चुप हो जाना पड़ा क्योंकि तब तक तो आकर सिर पर सवार हो गयी थी रेलगाड़ी। हम दोनों उसपर सवार हुये। खन्ना जी को एक स्टेशन छोड़कर दूसरे पर उतर जाना था। फिर जरा कुछ सख्त बातें भी हो गयी थीं। इसलिये कम्पार्टमेन्ट में आपसी और घरेलू किस्म की बातें छिड़ गयीं और उतरते-उतरते उन्होंने मुझसे वायदा करा ही लिया कि अब जब मैं काशी से घर आऊँगा तो उनके दर्शन अवश्य करूँगा।

उन्हें जहाँ उतरना था, वहाँ उतर गये और मैं आँखें बन्द किये, विचारों में बेतहाशा धुत्त अपनी सीट पर बैठा रहा।

१

लोगों की समझ को क्या कहूँ ? जैसे कोई दूसरा काम ही न हो ! बस जब देखिये, सिर पर सवार रहेंगे। सुबह शाम की डाक से खत पर खत चले आ रहे हैं। किसी में तारीफ, किसी में शिकायत। ऐसा भी हुआ है कि कभीकदा दो-दो चार-चार रोज तक लगातार कोई एक ही शख्स एक ही बात बार-बार लिखकर परेशान करता रहेगा। क्या खूब तमाशा है ! फिर भी ये अनजाने दोस्त मेरे सिर आँखों पर हैं। गाली दें या आशीस लेकिन याद तो कर लिया करते हैं।

सोचिये, मैं क्या कहूँ, क्या नहीं, इससे किसी को क्या लेना देना ? मगर नहीं, लोग खोद-खोद के पूछेंगे—और क्या काम करते हैं ? ज़रिया माश क्या है ? कितनी उमर है ? गोरे हैं या काले ? कैसे सोचते हैं ? कैसे इतना सब लिख लेते हैं ? हँसते हैं या मुस्कुराते ? कितने घन्टे सोचते हैं ? कितने घन्टे पढ़ते और कितने घन्टे लिखते हैं ? जिन्दगी में कौन-कौन सा करम छूटा है या सब कुछ भला-बुरा कर चुके हैं ? सच-सच लिखते हैं या सेन्ट-परसेन्ट कपोल-कल्पित ही ? कहानी में बिखरे हुए चरित्र, घटना और जीवन के चित्र सही हैं या कुल कल्पना-जनित ? गर्ज़ कि कुछ प्रश्न तो बड़े ही गम्भीर होते हैं और कुछ तो नासमझी से ही भरे हुए। खैरियत यही कहिये कि उनकी इन्कारी का दायरा कुछ मेरे ही तक सीमित रहता है अधिकतर क्योंकि कहीं अपनी समस्यायें पेशकर मुझसे हल की माँग करने लगते तो मैं, सत्य कहता हूँ, टें ही बोल जाता।

दो हाथ, दो पाँव, दो आँख, दो कान, दो छिद्रवाला नाक और दोहरे बदन का एक मामूली-सा, न ज्यादा लम्बा और न ज्यादा छोटा, कुछ समझदार किस्म का एक जीव हूँ। बहुतों से कम और बहुतों से ज्यादा पढ़ा-लिखा भी हूँ। सङ्गतराश हूँ, चित्रकार हूँ और मकराना के धवल सङ्गमरमर जैसे कागज पर जिन्दगी की तस्वीरें उतारा करता हूँ। लेकिन उन्हें गढ़ना पड़ता है। सच कहूँ, कुछ चरित्र, कुछ घटना, कुछ जीवन—बस इन्हीं सब चीजों को जोर-बटोरकर एक ढाँचा खड़ा कर दिया करता हूँ, जिसे पढ़कर दोस्तों का दो-चार-छै घन्टे तक थोड़ा बहुत मनोरञ्जन हो ही जाता है। कुछ पैसे भी जरूर पा ही जाता हूँ। उसी से पेट-परिवार की कुड़ागाड़ी को खींचनेवाले इञ्जन को कोयला-पानी देता हूँ और जिये जा रहा हूँ। मेरा कोई अजीबो-गरीब नक्शा बना हुआ हो तो उसे दिल-दिमाग से निकाल बाहर कीजिए।

हाँ, मैं कोई इतिहास लेखक भी नहीं हूँ क्योंकि यह तथ्य पर आधारित होता है। तथ्य सच भी होते हैं और गलत भी। रोजमर्रा की देखी सुनी बातों को कथा का रूप जरूर दे दिया करता हूँ। माना कि इसमें न नाम सच रहता है, न ग्राम सच रहता है और न बहुत से और ब्योरे। मजा तो यही है कि सब कुछ झूठ जान पड़ने पर भी आपको विश्वास ही नहीं पड़ेगा कि ये बातें झूठ हैं। ऐसा क्यों? कहानियों में चरित्र चुप रहते हैं और घटनायें जीवन की भाषा में बोलती रहती हैं। इसीलिए जीवन की सचाई आपको विवश करती है कि सरीही झूठ बात को भी आप सच मान लें।

एक बात और। आप ही नहीं, मैं भी थोड़ा-थोड़ा महसूस करता हूँ ये तीन बातें—मैं भी लिख सकता हूँ, मैं भी कुछ लिख लेता हूँ और मैं भी कुछ-कुछ आगे चल कर लिख लूँगा। मैं क्या करूँ? मेरा क्या कसूर ही है? माना कि प्रचार का युग है लेकिन हुआ करे। मेरी

शोहरत नहीं है तो नहीं सही। आज बीस-बाईस साल के बाद लोगों ने कहीं उपन्यास सम्राट् स्व० श्री प्रेमचन्दजी की खोज-खबर ली है नहीं तो उनके जीते जी तक उन पर पत्थर बरसाने वाले उनका विरोध ही करते रहे। खैर, यह बड़े-बड़ों की बातें हैं। मैं अपनी छोटी-सी दुनिया की मुसीबतों से छुटकारा पा जाऊँ तो यही बड़ी बात है। बिना कुछ साफ-साफ लिखे काम चलेगा नहीं। सुनिए फिर।

प्यारे दोस्तों! बुरा न मानना। बिना पैसा पाये एक पंक्ति नहीं लिखता और मैंने कुछ ऐसे वक्त को लिख-पढ़कर कुछ पैसे कमा लेने का चुना कि कलम सम्भालते-सम्भालते ही, पैसे की बरसात तो बिलकुल नहीं ही शुरू हो गयी लेकिन किल्लत कानी कौड़ी की भी नहीं हुई। और तो और, प्रकाशकों ने मुझे ईमानदार भी समझ लिया और जब-जब मेरा बिरवा सूखने लग जाता है तो अनायास कोई न कोई कुछ चुपके से जेब में डाल ही जाता है और बस मेरी गाड़ी चल निकलती है। वैसे एक साल के अन्दर की लिखी हुई कोई चीज मेरी मार्केट में नहीं आ सकी और इसका कारण सिर्फ यही है कि कोई जल्दी नहीं है, जिन्दगी सच है और मैं अभी काफी दिनों तक जिन्दा रहूँगा।

जी, तो जो कुछ इतना तमाम मुझे मुफ्त में, आप लोगों के लिए लिखना पड़ रहा है, उसका मुझे कोई अफसोस नहीं। कोई मैं पैसे का पिशाच तो हूँ नहीं। वैसे तो कभी न पैसे की परवा की और न कुछ ऐसा करने का इरादा ही है। लेकिन इस वक्त जरा तङ्गदस्ती की चपेट में बुरी तरह आ गया हूँ, इसलिए पैसे को अशर्फी समझ कर दाँत से पकड़ रहा हूँ।

पैसे नहीं हैं लेकिन किसी से इसकी शिकायत थोड़े ही करने जा रहा हूँ और न तो इसी बात की शिकायत है कि जो आप बार-बार खत लिखा करते हैं बल्कि आपको मैं शुक्रिया अदा करता हूँ। आपको शायद नहीं मालूम कि आप खत न लिखे होते तो मेरा मन-मस्तिष्क

इतना आन्दोलित होने ही क्यों जाता और मैं क्यों इतना तमाम लिखने के चक्कर में ही पड़ता, जो आपको जायकेदार जान पड़े और साथ ही साथ मेरे पैदा-प्राप्ति का कुछ आगम हो जाय....जी, ये चन्द लाइनें चाहे आपका जी खुश करें या आपको गम के गड्ढे में ढकेल दें लेकिन मुझे तो इनसे कुछ मिल ही जायगा। अच्छी बात है, असली बात पर आता हूँ। सुनिये....

जिन्दगी की तङ्ग से तङ्ग गली और चौड़ी से चौड़ी सड़कों से होकर गुजर चुका हूँ। चौड़ में भी चला हूँ और मुँह छिपाकर भी। सीना तान के भी, और सिर झुकाके भी। लेकिन इससे क्या? जिन्दगी ही है। नरम-गरम चलता ही रहता है। गलत-सही कदम उठते ही रहते हैं। बहार और पतझड़ आते ही जाते रहते हैं। जिन्दगी का जुलूस भी निकलता रहता है और जनाजा भी....चलने का नाम जिन्दगी और रुकने का नाम मौत और इसीलिए जिन्दगी से है मुझे मुहब्बत।

युनिवर्सिटी के जमाने की बात है। उन्हीं दिनों से नेता गिरी का थोड़ा-थोड़ा नशा मेरे सिर पर सवार होने लगा था। साथ ही साथ जरा बहुत साहित्यनुराग भी जोर मारने लगा था। इसलिये, भाई, मेरा पढ़ना-लिखना तो ऐसा ही तैसा रहा। छात्र सङ्गठन, मॉक पार्लामेण्ट, डिबेटिङ्ग सोसायटी, कविसम्मेलन, साहित्य गोष्ठी, होस्टल कॉमन रूम व्यवस्था, छात्रालयों का चुनाव आदि इतनी तमाम चीजें तो पढ़ते-पढ़ते तक युनिवर्सिटी की बाउण्डरी तक पीछे लगी रहती थीं किन्तु यदाकदा छुट्टियों में जब घर लौटता था तो वहाँ स्थानीय कांग्रेस का सङ्गठनात्मक चुनाव, लोकल बोर्डों का चुनाव तथा स्थानीय साहित्यिक एवं सार्वजनिक सामाजिक संगठनों में भी, संयोग से, बझ जाता था। इस तरह पढ़ाई के दौरान में एक बार और पढ़ाई खतम करके कमाई शुरू करते-करते तक, दूसरी बार देश में

चलनेवाली आजादी की लड़ाइयों में भी अपने को झोंकने से मैं बाज न आ सका।

और पढ़ाई का मामला जरा टेढ़ा होता है। न जाने कैसे मैं बराबर पास ही होता गया। बड़ा से बड़ा और मामूली से मामूली चुनाव चाहे विधान सभा का हो या हो किसी स्थानीय पुस्तकालय की कार्यकारिणी समिति का—लेकिन मैं जरूर दिलचस्पी लेता था। लेफ्टिस्ट होना, विरोधी दल का साथ देना, कम तादाद और कमजोरों का शहजोरों के मुकाबिले साथ देना ये आदतें मेरी बहुत शुरू की हैं।

छै-सात साल बीतते, बोलिये, कितनी देर ही लगती है। पढ़-लिख और डिग्री लेकर युनिवर्सिटी से बाहर की दुनिया में पैर रक्खा और साथ-साथ अपने लेता आया वह सारी अच्छी-बुरी आदतें—जिनकी बदौलत—जैसे चन्द लोग अब भी कहते हैं—मैं न रहा घर का, न घाट का—उनकी बौनी बुद्धि पर मुझे क्षोभ नहीं, तरस आता है। आगे बढ़िये। हाँ, उधर देश में बयालिस का विप्लव प्रारम्भ हुआ और इधर मेरी वकालत शुरू हुयी। दोनों का मुहूरत एक ही सन् सम्बत में हुआ और दोनों एक से एक बढ़कर शुभ घड़ी में। एक तो ऐसी शुभ घड़ी में कि देश स्वतन्त्र ही होकर रहा और दूसरी उससे भी अधिक शुभ घड़ी में और वह यों। कोशाध्यक्ष एवं धनपति कुबेरजी महाराज के घर पहुँचने के लिये मैं घर से निकला लेकिन रास्ता भूल गया और भटकता हुआ जा पहुँचा हूँ महामाया श्री सरस्वती के विद्या-मन्दिर में। क्या विडम्बना है! विधि-विधान, नहीं-नहीं, जिन्दगी का प्रवाह ही कुछ अजीब होता है।

जी, तो जो हाल मेरी पढ़ाई का हुआ, वही मेरे वकालत के धन्धे का भी। सिर्फ पास होने के लिये पढ़ता था ताकि माँ बाप को आँसू न बहाना पड़े। किसी कम्पिटिशन में बैठने के ख्याल से तो पढ़ता ही नहीं रहा। वकालत भी करता रहा, समय के मुताबिक मजे

में पैसे भी पीट लेता रहा लेकिन उसे मैंने अपनी जिन्दगी का कभी मिशन नहीं बनाया। इसीलिये उसे भी मेरी परवा कम ही रही। नेता-गिरी, साहित्यानुराग एवं अध्ययन, साहित्यिक सनक, समाज सेवा, सार्वजनिक जीवन की चहल-पहल, चुनाव आदि अनेक बहुतेरी चीजें मेरी जिन्दगी के साथ इस तरह हिल-मिलकर चलती रहीं, जैसे ये सभी मेरे जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें हों।

बयालिस में नहीं, तैतालिस के पहले दो में से किसी एक महीने में और ठीक उसी तारीख को लेकिन दिन नहीं, रात में, बारह बजे—जब पूज्य बापू आगा खाँ भवन में आमरण अनशन प्रारम्भ किये थे—मुझे राजद्रोह के सन्दिग्ध अभियोग में गिरफ्तार कर बड़े घर का मेहमान बना दिया गया। बापू का अनशन समाप्त हुआ और कुछ दिनों के बाद मेरी भी रिहाई हो गयी। वापिस लौटने के कुछ समय बाद जेल में लिखी हुई कविताओं का मैंने एक संग्रह छपवा डाला। और अब वकील सह देशभक्त सह कवि-साहित्यिक हो गया। तब तक विद्रोह की आग काफी तौर पर दबायी जा चुकी थी। सारा देश जेलों में कैद था।

सच कहता हूँ, थोड़े ही दिन तो रहना पड़ा लेकिन वहाँ इतना मन रम गया था कि बाहर जरा भी मेरा मन नहीं लगता था। शैतानों ने ज्यादा दिन जेल में मुझे रहने नहीं दिया। मुझे हमेशा आन्दोलन चाहिये, हलचल चाहिये। सफर खर्च लेकर कवि सम्मेलनों में जाने का धन्धा भी करने का सोचने लगा लेकिन इस काम के लिये मैं कुछ 'ओवरएज' हो चला था। अच्छा छोड़ो इसे भी। तब क्या करें? सोचा, पत्रकार ही क्यों न बन जाऊँ? बस एक दिन निकल पड़ा और एक बहुत बड़े शहर से निकलने वाले हिन्दी के एक दैनिक में कई महीनों तक सवेतन अप्रेन्टिसी भी करता रहा और साथ ही साथ चाँदमारी भी। संयोग की ही बात कहिये कि एक

गोली निशाने पर जाकर बैठ ही तो गयी और दूसरे ही दिन मैं वहाँ से गोल हो गया। मेरी गोटी कहीं और ही जगह लाल हो चुकी थी। गर्जे कि कागज से करोड़पति बननेवाले एक मालिक को छोड़कर मैं जा पहुँचा एक दूसरे करोड़पति के यहाँ!

यह उस जमाने की बात है, जब उस शहर में करेन्सी नोटों की दिन रात बरसात ही होती रहती थी। फिर क्या था? कमाने-खाने के चक्कर में मैं भी पड़ गया। अपने को इससे इन्कार नहीं कि मेरी भी जेबें गरम हुयीं लेकिन मेरा माथा बराबर ही ठण्डा बना रहा। रुपयों के आगे मुझे कुछ दिखायी ही न देता रहा हो, कम से कम ऐसी बात हर्गिज-हर्गिज ही नहीं हुयी। हाँ, कभी-कभी रुपयों की रौनक और रोशनी से मैं चौंधिया जरूर जाता था लेकिन अपनी तो जात ही अलग है। गिर-गिर कर सम्भल जाने के लाजवाब नमूने मेरी जिन्दगी, एक बार नहीं, अनेक बार पेश कर चुकी है।

करीब-करीब तीन साल तक मौज-मस्ती से दिन बीतते रहे। एक दिन, अपने उलजलूल दिमाग और कार्य शैली के कारण, मैंने सोचा, क्या यही जिन्दगी है? चौबीस घन्टे सिक्कों के स्वर सुनते रहने के लिए ही पैदा हुए हो? पैसे जोड़नेवालों की सेवा करते-करते मेरे जोड़ों में दर्द होने लगा था। क्या मैं भी था कि जो एक जगह मढ़ बनकर बैठ गया तो न कहीं जाना, न कहीं आना। मन डोल गया जब तो कहाँ मैं रुक सकता था! वह जिन्दगी भी मुझे खुश न रख सकी। बस क्या? टाट उलट दिया, अपने ही हाथ से बसे-बसाये घर में आग की एक तिनगी फेंक दिया और देखते-देखते घर जलकर खाक हो गया। घर से बाहर बने हुए इस बसेरे का नाम बुताकर मैं घर वापिस आया और उसी साल मुल्क को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुयी। फिर वही पुराना धन्धा शुरू किया।

इस फेरे में पाँच साल तक इस धन्धे में डटा रहा जहाँ कि पिछली बार सिर्फ तीन ही साल तक रहा था। अब थोड़ा ताज्जुब होता है कि आखिर यह असाधारण वृद्धि कैसे हुयी। लेकिन जब गौर करता हूँ तो वजह की तलाश में मुझे भटकना नहीं पड़ता। बात यह हुयी कि इस अरसे में मैं करता तो रहा जरूर वकालत लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में गुल्ली-डण्डा खेलने की मुझे पूरी-पूरी छूट मिली थी। इसलिए मैं नेता भी बना रहा और दोनों क्षेत्रों में जो ऊँची-ऊँची छलाँगें भरने लगा कि देखनेवाले दङ्ग रहे। गर्जे कि मेरा व्यक्तित्व क्रमशः असाधारण होने लग गया।

इस जिन्दगी के दौरान में, विश्वास करें, एक ऐसा भी वक्त, कुछ ही दिनों के वास्ते, आ गया था कि मैं ही मैं दिखायी देता था। मेरा हर कदम गैर मामूली, मेरे हर शब्द मतलब से भरे, सभी लोगों को जान पड़ने लगे थे। स्थानीय राजनीति में मजे हुए बड़े से बड़े खिलाड़ी सामने आने में हिचकने लगे थे। लेकिन दाँव-पेंच में तो मैं माहिर था नहीं और पके बाल वाले पैंतरेबाजी में पक्के हो चले थे और पड़ा था मेरा उनसे ही मुकाबिला। और यह भी कि दन्द-फन्द वाली दुनिया में ईमानदार और पाक-साफ भी बनने मैं चला था। क्या कहूँ, मैं उत्साही भी था, साहसी भी था, मुँहफट भी था और संयोग से नौजवान भी और जो भी बुजुर्ग सहयोगी मेरे थे, वे सभी एक से एक खूँखार किस्म के ईमानदार और खरी-खोटी सुनाने वाले। सभी अपने को मिटाकर समाज की, सङ्गठन की, नेताओं की गन्दगी दूर करने को कटिबद्ध थे। और इधर अब तक जमाना आ गया था लेनदेन का, सौदेबाजी का, तुम न कहो मेरी और न मैं कहूँ तेरी। इस जमाने के काबिल मैं नहीं रह गया था। मेरे ऊपर नापाक हमले हुए। मेरे पैर उखड़ गये लेकिन अब आकर ऐसी जगह जम गये हैं कि मुझे बीतों दिनों के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं रह गयी है। नया जीवन, नयी दिशा,

नयी राह, नयी रोशनी मिली है और मैं बहुत खुश हूँ और मुझसे बढ़कर खुश है मेरा अन्तर मन।

मेरा ख्याल है, और वह अपनी जगह पर सही और दुरुस्त, कि सचमुच जिसे जिन्दगी कहते हैं, वह मेरी इधर करीब चार साल से ही शुरू हुयी है। इसमें ईमानदारी, जीवन, जोश, जवानी, जिम्मेदारी, मस्ती, बेहोशी ज्यादा है और गम कम। दोस्तों को मेरे बीते दिनों की मुझे याद दिलाने में जैसे बड़ा मजा आता है! मैं उन दिनों को भुला देना चाहता हूँ लेकिन जब मेरे दोस्त मानें तब न। इसीलिए अपने पुराने दोस्तों से मैं मिलना चाहता भी नहीं लेकिन जिन्दगी है। एक दूसरे से काम पड़ता ही रहता है।

एक दिन की बात है कि एक दोस्त के घर मुझे जाने का काम आ पड़ा और मजबूरन मुझे उनके यहाँ जाना ही पड़ा। लेकिन उनसे वादा भी कर चुका था उस दिन ट्रेन में। इसलिए कोई तकलीफ नहीं हुयी। देखिये, इधर घर-द्वार से अलग एकान्त में रहकर साधनारत रहने का आदी हो जाने से कुछ भीड़-भाड़ में जाने को मेरा जी भी नहीं चाहता। संसारयटी से कोई शत्रुता थोड़े ही है किन्तु कोई विशेष दिलचस्पी भी नहीं रह गयी है। हाँ, तो शिष्टाचार गत अभिवादन के आदान-प्रदान के पश्चात् मेरे दोस्त मुझसे पूछ ही तो बैठे—

"पापड़ ही बेल रहे हो या कुछ कर-धर भी रहे हो?"

अब इस सवाल का क्या जवाब देता! सख्त बात बोलकर उनका जी दुखाना नहीं चाहता था। उन्हें अब भी मुझसे उम्मीदें हैं क्योंकि वह मुझे अब भी अपना समझते हैं मगर अपने-पराये के 'टर्म' में सोचने की मेरी आदत इधर धीरे-धीरे करके छूटती जा रही थी। फिर भी अपने पर कन्ट्रोल लगाकर मैंने कहा—

"लावारिस कुत्ते की भी कोई जिन्दगी होती है? बस वही समझें मुझे!"

वह चुप हो रहे। शायद मेरे आहत मन का आहट उन्हें लग गया। इसलिये मौन होकर मरहम लेपन करना चाहते रहे हों। मैंने इस बात को ताड़ लिया। तुरन्त बोला—

"यही कुछ लिख-पढ़कर जीविकोपार्जन कर लेता हूँ।"

इतना सुनना था कि वह फिर कड़े पड़े और बोले—

"जनाब, यह बात है! अब इस पर उतर आये। भलेमानस यही जिन्दगी जो शुरू से ही कबूल किये होते तो कहाँ से कहाँ पहुँच गये होते। दस-पन्द्रह साल का जमाना कुछ होता है।"

सोचा, अब बात बढ़ेगी। बिना दो-दो फक्कड़ लिये-दिये काम चलेगा नहीं। बोला—

"एक नावेलिस्ट की कही हुयी बड़ी ही बढ़िया बात आपको सुनाऊँ। उसका नाम तो सुना ही होगा, किताबें भी उसकी जरूर ही पढ़ी होंगी। वही 'मॉम'।

"हाँ, हाँ!"

"अपने एक उपन्यास में ऐसा उल्लेख किया है—"Well, you know when people are not good at anything else, they become writers." मेरा भी यही हाल है।"

मेरे दोस्त मेरा मुँह ताकने लगे। सोचने लगे होंगे, यह जरा गहरे डूबने लगा है। फुरसत मिली है, पढ़ता ही हो काफी तो कौन जाने....खैर, उनके सोचने से अपने को क्या? कुछ क्षण चुप रहकर वे बोले—

"आदमी जहाँ जाना चाहता है वहाँ एक न एक दिन पहुँच ही जाता है। परिस्थितियाँ भी उसके पुरुषार्थ को सहयोग देने लगती हैं। ठीक है, लेकिन जब कुछ दिनों जमकर इस लाइन में भी टिके रह

सको तब तो कुछ न कुछ जरूर ही कर गुजरोगे और अगर इस डाल से उस डाल पर उछलते ही रहे तो कहीं के न होगे।"

अब मुझे जरा गम्भीर होना पड़ा किन्तु स्वाभाविक और संयत स्वरों में ही बोला—सतही तौर पर देखा जाय तो आपकी बात अपनी जगह पर बिलकुल सही, सच व दुरुस्त है लेकिन जो गहराई में उतर कर देखें तो पता चलेगा कि मैं इतने दिनों तक किसी खास चीज की तलाश में ही रहा। जरूर भटकता रहा, इधर-उधर हाथ पैर फेंकता रहा, इस टहनी से उस टहनी पर जाता रहा मगर मेरी गति में सुशृङ्खला बद्ध विचारों का, चेतना का, एक प्रवाह सदैव ही विद्यमान रहता आया। लोग इसे लोफरी कहें कि तुमने बहुत खोया मगर मैं इसे मानने से रहा। मैंने इस बरबादी में भी बहुत कुछ पाया। मुझे चेतना मिली, अनुभूति मिली, कल्पना मिली, भावना मिली, दिव्य एवं सूक्ष्म दृष्टि मिली। मेरी आँखें खुल गयीं। जिन्दगी को, उसके पर्त-पर्त को उघाड़ कर, देखने, समझने, जानने, पहचानने का इतना ज्यादा मौका मिला कि मैं आज गला फाड़कर कह सकता हूँ कि जो मुझे मिला वह कारूँ के खजाने से भी बढ़कर है, उसकी सिक्कों में कोई कीमत नहीं। मुझे अक्षय धन मिला और सो भी संग्रह के लिये नहीं, दोनों हाथ से लुटा देने के लिये। अनोखे अनुभव, अपार अनुभव, दिल की दौलत—क्या ये सब मामूली चीजें हैं?"

मेरे दोस्त मेरे कथन का मर्म समझ रहे थे किन्तु बातें खतम होते-होते तक इतनी गम्भीर हो गयी थीं कि उन्हें ये कुछ बहुत अच्छी नहीं लगीं। इसी से, शायद, उनके चेहरे पर अधीरता की कुछ लकीरें भी उभरी हुयीं सी मुझे जान पड़ने लगीं। और इसीलिये मैं चुप भी हो गया। इधर मेरा चुप होना था कि वह तड़ाक से बोल ही तो बैठे—

"क्या बेपर की उड़ाये जा रहे हो?"

"यही समझकर मैं खामोश भी हो गया कि...."

मेरे व्यंगात्मक आत्म-समर्पण से जैसे मेरे दोस्त कुछ थोड़ा मन-ही-मन कनमना उठे लेकिन आ लगे राह रास्ते पर और तनिक सहानुभूति के स्वरों में बोले—

"अच्छा है, किस्सा कहानियों का ज़माना भी है। हिन्दी में काफी लोग उपन्यास पढ़ने भी लगे हैं। काम कोई बुरा नहीं है।"

इतनी देर बाद आखिर दाँव में आ ही फँसे। अभी तक तो छिछली-छिछली बातें हो रही थीं लेकिन अब जरा वातावरण गम्भीर होना चाहता है। ऐसी प्रतीति हुयी मुझे। बस उनके मुँह से बात छीनते हुये मैंने कहा—

"इतना ही नहीं, आजकल सर्वाधिक पढ़े जाने वाले साहित्य का ही नाम उपन्यास है।"

"हाँ लेकिन यह कुछ अतिशयोक्ति है।"

"रत्ती भर नहीं। उपन्यास ही क्यों? इसका उत्तर मुझसे सुन लीजिये। आजकल हिन्दी में पठनीय सामग्री के नामपर विभिन्न वस्तुयें उपलब्ध हैं। नाटक, एकांकी, रूपक, रेडियो रूपक, कहानी (लघु एवं दीर्घ), कविता (गीत, मुक्तक, महाकाव्य), लघु एवं दीर्घाकार गल्प, उपन्यास, रिपोर्ताज, स्केच, व्यङ्ग एवं हास्य प्रधान शब्द चित्र (गद्यमय, पद्यमय दोनों), साहित्यिक आलोचनायें, नाना प्रकार के निबन्ध-प्रबन्ध, सभी कुछ तो है। आज बहुतेरी सामग्री सुलभ है। जिसको जिसमें मजा मिले, वह उसी का आनन्द ले। और साथ ही साथ उस ढङ्ग की भी प्रबन्ध-पुस्तिका आप को मिल जायगी, जिसमें उपरोक्त 'वेरायटी' का बराबर-बराबर मजा एक ही जगह मिल जायगा लेकिन जैसे बिन्दु सिन्धु में सरिता के प्रवाह के माध्यम से जाकर विलीन हो जाता है और हमारे सामने एक बड़ा-सा सागर लहराता दिखायी देने लग जाता है वैसे ही उपरोक्त सभी तत्व अपना अस्तित्व खोकर एक

नयी चीज़ का निर्माण करने लग जाते हैं, जिसमें उनका पृथक अस्तित्व तो उतना दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु लोगों को महसूस होता रहता है कि यह सम्पूर्ण वस्तु कई चीज़ों को मिलाकर इस रूप में बन पायी है। और वही सम्पूर्ण वस्तु है उपन्यास। रसाभिव्यंजना एवं वस्तु वर्णन के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न अञ्चलों के पूर्ण चित्र पाकर उपन्यास का पाठक पुलकित हो उठता है। इसीलिये उसे उपन्यास पढ़ने में बराबर मजा मिलता है। इतना ही नहीं, वह बड़े-बड़ों के उपन्यासों को भी पढ़ता है और छोटे से छोटे लेखकों की चीजों को भी। हिन्दी का दिग्गज आलोचक यही जानता है कि 'गोदान' के बाद कोई उपन्यास निकला ही नहीं कि उसे पढ़ा जा सके। यह उसका ख्याल है। वह महान है। जो चाहे अपने मुँह से निकाल सकता है लेकिन पाठक, जो पैसे देकर उपन्यास खरीदता और पढ़ता है, एक उपन्यास खतम करता है और दूसरा पढ़ना चाहता है। लेकिन इसके यह माने थोड़े ही हुये कि उपन्यासों का ध्येय लोकरञ्जन मात्र ही है। पाठकों को प्रेरणा प्रदान करना उपन्यासों का ध्येय होना चाहिये और धर्म भी होना चाहिये। सतह और बुनियाद में जो अन्तर है वही अन्तर है लोकरञ्जन एवं प्रेरणा में। बच्चे के हाथ में लड्डू पकड़ाकर तब उसके सिर पर उस्तरा चलाते हैं ताकि वह मिठाई में ही 'लुगधा' रहे। वही बात उपन्यासों के साथ भी सच है। उपन्यास-पाठकों को आप बूढ़ा बच्चा समझिये। पहले अपनी रोचक कहानी से इनका जी चुरा लीजिये और तब यदि उपन्यास के पन्नों में, यत्र-तत्र बिखरी पड़ी प्रेरणायें इन्हें मिल जायँगी तो उन्हें ये प्रेमपूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लेंगे। क्यों? चुपचाप सुनते ही जाइयेगा।"

"कुछ चीज ही इतनी ऊँची उड़ान की कहे जा रहे हो कि बस चुप होकर सुनने ही को जी चाहता है। अच्छा, एक बात बताओ। उपन्यास की मोटी-मोटी पोथियों से क्या फायदा? तुम भी ऐसी ही

किताबें लिखते होंगे ? समझते हो कि पढ़ने वाले अपने घर के निठल्ले ही हैं ?"

"बड़े भाई, ठीक कहा आपने। पते की कही। जिन्दगी भर में कोई कथा-शिल्पी एकाध कोई भारी-भरकम मोटी-सी किताब लिख डाले तो वहाँ तक तो कोई बात नहीं लेकिन अगर उसकी हर किताब बेडौल साइज की ही निकलती रहे तो उसे क्या कहा जाय ! कलाकार को कैद नहीं किया जा सकता है न ! मेरे एक प्रेमी ने तो यहाँ तक कह डाला मेरे मुँह पर ही कि आपको मुख्तसर में बातें करना आता ही नहीं जैसे। गम्भीर से गम्भीर, ज्यादा से ज्यादा बातें जो थोड़े में कहीं जा सकें तो वे पुरअसर भी होती हैं और साथ ही साथ पाठकों का वक्त भी बरबाद होने से बच जाता है। जमाना दिन ब दिन बारीक होता जा रहा है। 'थोड़े में बहुत' वाला वक्त करीब-करीब आ चुका है। हाँ, इतिहास की बात और है, ऐतिहासिक उपन्यासों की काया तो जरूर भारी भरकम होगी लेकिन वर्तमान जीवन के यथार्थ का बारीक से बारीक चित्रण जितना लघु आकार में सम्भव है उतना दीर्घाकार में नहीं। मैं भी इस दिशा में प्रयत्नशील हूँ कुछ दिनों से। इधर कुछ लिखने वाले लोग इस दिशा में काबिले तारीफ कदम उठा भी चुके हैं। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा, देखा है न आपने ?'

"हाँ, प्रशंसनीय प्रयोग अवश्य है। क्यों, अभी तुम 'साँस' की चर्चा कर रहे थे न ? उसे पूरा पढ़ चुके हो ?"

"थोड़ा बहुत।"

"नहीं, पूरा-पूरा पढ़ डालो। काफी फायदा होगा।"

"जरूर पढ़ डालूँगा। हाँ, यह बात है जनाब ! आप तब तो आलोचना भी कर सकते हैं ? आखिर जब इतना सारा पढ़ते हैं तो उससे कुछ अपने लोगों का फायदा भी होना चाहिये ?"

"बस ! मामूली जुलाब से जनाब की आतें अकड़ी जा रही हैं। अभी तो तुमने कलम पकड़ी है। अभी कितनों के करारे चाटे खाने पड़ेंगे।"

"इससे थोड़े ही घबड़ाता हूँ। अच्छा, चलो खुशी की ही बात है कि अपना एक बुजुर्ग दोस्त 'क्रिटिक' भी निकला। बहुत जल्द आपकी खिदमत में अपना एक सेट रवाना कर दूँगा।"

"लेकिन इस उम्मीद से नहीं कि मैं अपना सारा काम-काज छोड़ कर तुम्हारी किताबों पर समीक्षात्मक लेख लिखने बैठूँगा।"

"भाई, पढ़ तो डालेंगे ही कम से कम। कोई पेशे से थोड़े ही आप हिन्दी के आलोचक हैं। 'अमेचर क्रिटिक' हैं। इसलिये यदि कोई कमी नजर आयेगी, कोई गलती पकड़ पायेंगे तो पेट में ही छिपाये नहीं रहेंगे। जब कभी मुलाकात होगी तो जरूर ही बता जायेंगे।"

"तुम भी क्या कहते हो ! बनाओ नहीं। भला तुम्हें....अच्छा, तुम्हारे उपन्यासों के विषय क्या-क्या होते हैं।"

"भई, अभी तक तो विषयों का कोई खास सिलसिला नहीं रहा। बस हाथ बैठा रहा हूँ क्योंकि कई सालों से लिखने का अभ्यास छूट गया है और उसी अभ्यास को पुनर्जीवित करना है। लेकिन इधर जीवन और उसकी विविध समस्याओं को ही अपना केन्द्र बिन्दु मानकर घूमते रहना चाहता हूँ। अपना और अपने पाठकों का जरा जायका बदलने के लिये वर्तमान से अतीत की ओर लौट कर देखने की भी इच्छा हो रही है कि आखिर हम क्या थे और आज क्या हैं ? इसलिये ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर भी झुकाव हो गया है। यों तो आज ऐसे यथार्थवादी एवं समस्या मूलक उपन्यासों के प्रणयन की अधिक से अधिक मात्रा में आवश्यकता है जिनमें मानव जीवन, ग्राम्य जीवन की पूरी-पूरी तस्वीर हो, जिनमें आज के इन्सान की सभी

सामयिक एवं सर्वकालीन समस्यायें हों, जिनमें आज के इन्सान को, आज के ग्रामीण को, अर्थ-वैषम्य की नींव पर निर्मित समाज, संस्कृति, परम्परा आदि को रसातल में मिला देने के लिये उत्तेजनात्मक प्रेरणा हो, जिनमें मानव को कर्मठ, कार्यकुशल, स्फूर्तिवान बनने का उद्बोधन हो, जिनमें नवनिर्माण की ओर अग्रसर होने का ठोस सुझाव हो, जिनमें प्रगति हो, प्रयोग हो, जीवट हो, जीवन हो।"

"बस, बस, जोश में क्या-क्या कह गये? कुछ ख्याल है? भला मैं तुम्हें बताने के काबिल हूँ!"

"क्या सुबह से आपको कोई ऐसा शख्स, मेरे सिवा, मिला नहीं जिसे आप पेट भरके मूर्ख बना सके हों?"

"कैसी बातें कर रहे हो? आश्चर्य है, कहाँ से कहाँ निकल गये तुम? यहाँ तो सुबह से शाम तक जो कचहरी, मिसिल, मुकदमा, घर-गृहस्थी, बाहर-भीतर, बीबी बच्चे, कालेज-अस्पताल यानी दुनिया भर का कबाड़ा लगा रहता है कि तबीयत परीशान हो जाती है। अच्छे रहे दोस्त, मैं पहले ही समझता था कि तुम्हारी तरह की बनावट वाले लोग पालिटिक्स या प्रैक्टिस के लिये नहीं बनाये गये हैं। तुम्हारी तो जगह कहीं और ही है? और अब तुम ठीक मुकाम पर पहुँच गये हो। अच्छा, इसी खुशी में अपनी भाभी के हाथ की बनायी चाय तो पीते जाओ।"

"लेकिन भाभी के हाथों से ही पीना चाहता हूँ।"

"रहम करो। बनी बनायी घर-गृहस्थी किसी की उजाड़ने के चक्कर में न पड़ो। इसीलिये भले आदमी लेखकों को, कवियों को अपने जनाने खाने में 'इन्ट्रोड्यूस' करने से हिचकते हैं।"

"लेकिन बड़े भाई, समझदारी तो समय पाकर ही आती है। और अब मैं पहले से बहुत ही ज्यादा समझदार हो गया हूँ। डरिये नहीं

मेरी नारी 'सीता' है, 'गार्गी' है, आज की कोई तितली नहीं। नारी को मैं वासना का नहीं, प्रेरणा का, शक्ति का स्रोत मानता हूँ।"

"तब कोई खतरा नहीं।" कहते हुये बड़े भाई घर में चाय के लिये आदेश देने चले गये।

३

"बड़े भाई, जिद्द को बस जहर समझो। मान जाओ, मामूली सी बात है, अपने अधीनस्थ कर्मचारी के कामों पर निगाहें रखनी पड़ती हैं। कम से कम आप एक बार निजी तौर पर मामले की जाँच कर लें।" मैंने आजिजी से कहा खन्ना जी से।

"मेरा इरादा बदलने के लिये थोड़े ही बनता है।"

"बेशक, जिद ही तो है।"

"क्यों नहीं? आज जो घाट-घाट के पानी पी रहे हो, दरबदर की खाक छाननी पड़ रही है, वह सब क्यों होता? राजा बने ठाठ से अपना काम करते और मौज की, आराम की जिन्दगी बसर करते मगर ले डूबी तुम्हें तुम्हारी जिद। पहले अपने को देखो जनाब।"

"बड़े भाई, अपने को देखने, पहचानने के लिये ही तो मैंने यह जिन्दगी कबूल की। रही बात जिद की सो उसको भी सुन लें। आदमी अगर कमज़ोर है तो जिद उसकी गरदन पर सवार होकर उसे रसातल में पहुँचा देगी और मजबूत है तो उसे आसमान पर चढ़ा देगी। मुझे जिद से ताकत मिलती है आगे बढ़ने की लेकिन आपकी जिद आपको ही पैर पकड़कर पीछे खींचती है।"

"क्योंकि मैं कमजोर इन्सान हूँ और आप ठहरे ताकतवर।" व्यङ्ग भरी मुस्कान उनके अधरों पर खेलने लगी।

"आपने समझा नहीं। जिद बहुत बुरी चीज़ भी है और बहुत अच्छी भी। बाज़औकात मेरी जिन्दगी में भी जिद ज़वाल साबित हो चुकी है। लेकिन ज्यादातर मैंने यही पाया कि जिद मन को मजबूत करने का अच्छा साधन है। इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं जिद की कहानियों से। इस जिद ने जीवन में ऐसी-ऐसी घटनाओं को जन्म दिया है कि देखते-देखते बड़े से बड़े राजमुकुट धूल में मिल गये, बड़ी-से बड़ी जातियाँ मिट गयीं। लेकिन यहीं तक नहीं। जिद से संहार तो हुआ ही लेकिन सृजन भी।"

"भला, कोई दिलचस्प किस्सा ही सुना जाओ।"

भाई साहब का 'मूड' बदला हुआ है। ठीक है, इनके मन को मोहकर तब उस गरीब का काम इनसे निकालूँगा। किस्सा जितना चाहें सुनें लेकिन आदमी ये घुटे हुये हैं। टार्जन, चन्द्रकान्ता से यहाँ काम न चलेगा। इन्हें ऐसा किस्सा चाहिये जो इनका बौद्धिक मनोरञ्जन भी कर सके। लेकिन इससे ज्यादा से ज्यादा यही होगा कि इनका जरा 'मूड' बन जायगा तब तो मैं फिर इनसे एक बार उस गरीब के काम के लिये इसरार कर ही सकूँगा....मुझे मौन देखकर उन्होंने कहा—

"याद कर लो।"

"जी, कोई बहुत ही मजेदार कहानी सुनाना चाहता हूँ। इसीलिये याद कर रहा हूँ।" कहकर मैं चुप होकर पुनः सोचने लगा। हाँ, सिर्फ मजेदार कहानी से नहीं काम चलेगा। इन्हें मजेदार और मार्मिक कहानी सुनानी होगी। लेकिन कहाँ जाऊँ गढ़ने या इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़ने। फिर कहानी तो बनायी नहीं जाती। लिखना शुरू किया तो लिखते चले गये और जहाँ कलम बन्द हुयी, वहीं तक उस

कहानी की लिपिबद्ध जीवन गाथा हुयी क्योंकि अन्त तो कहानी का होता ही नहीं। इसमें क्या सोचना, क्या वस्तुयोजना, क्या समालोचना-शास्त्र के पन्ने उलटने ! सब बेकार है।

मेरे बड़े भाई का स्वार्थ यहीं तक है कि इन्हें इस वक्त मजेदार कहानी सुनने को मिले और मेरा स्वार्थ है कि इनके मन में सर्वहारा के प्रति जो उपेक्षा एवं उदासीनता की भावना पुंजीभूत है उसे निकाल बाहर फेंकना और इनके मन में जन-जन के लिये सम्वेदना का संसार बसा देना। ठीक है, कहना शुरू कर दूँ, वर्ना कौन जाने कोई दूसरी ही बात छेड़ दें। बस मैं बोल उठा—

"बड़े भाई, बातें बहुत सी हैं। कहानियाँ इतनी हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं, आसमान के तारे आप हम गिन डालें भले ही लेकिन कहानियों की तादाद को तै करना महा मुश्किल ! और इसी जङ्गल में से मुझे फूल चुनने हैं ताकि कहानियों का अच्छा-सा गुलदस्ता आपको नज़र कर सकूँ।"

"सुनाओगे या भूमिका बाजी ही होगी।"

"जी हाँ, अभी-अभी, लीजिये लेकिन एक अर्ज करना चाहता हूँ। इजाज़त है।"

"हाँ, हाँ।"

"बात यह कि आज कल ज़माना दिन ब दिन बहुत ही बारीक होता जा रहा है। मैं कहता हूँ उन कपड़ों से भी ज्यादा महीन, और झिलमिला जो आजकल हमारी बहू-बेटियाँ पहिना करती हैं। आप चाहें तो उनके शरीर के बाल-बाल गिन लें। इस टाइप की बारीकी बुरी है या भली, यह भी किसी से छिपी नहीं लेकिन इससे बारीकी तो कोई खराब बात हो नहीं जायगी। हम आप किसी भी अच्छी चीज का गलत इस्तेमाल करें तो उससे वह चीज बुरी नहीं हो जायगी बल्कि बुरे होंगे हम-आप। याद है न किसी शायर ने कहा है, जिसका आशय

है—आदमी खराब नहीं बल्कि जो कुछ खामी-खराबी उसमें है वह और कुछ नहीं उसकी आदतें। कहने का गरज यह कि आज की जिन्दगी की तस्वीर चन्द लाइनों की ही मदद से पूरी हो जाती है। आज केवल दो-तीन रेखायें जीवन के सम्पूर्ण चित्र को उभाड़कर आपके सामने रख देने के लिये पर्याप्त हैं। 'स्ट्रोक, शाक, शाट, हिट' सभी कुछ सूक्ष्म से सूक्ष्म होना चाहिये। बस जीवन की समूची की समूची तस्वीर आपके सामने बोलने लग जायगी।"

"जनाब, थोड़ा बहुत मैं भी समझता हूँ। तोता-मैना, बैताल-पचीसी, दादी-नानी, अलिफलैला सुनाने के लिये मैंने आपसे आग्रह नहीं किया है।"

जमीन अच्छी बना ली है। मैं अपनी कहानी से इनके मन के तार-तार को झकझोर दूँगा। बोला—

"बड़े भाई! गुणी ठहरे आप। चार पाँच सौ रुपये फिक्शन साहित्य खरीदने में जो सालाना खर्च करता है, जिसकी आलमारी में नये से नये गल्प मौजूद हों, वह क्या कोई मामूली आदमी है! इसीलिये तो डर लग रहा है आपको कहानी सुनाने में मुझे।"

"जानता हूँ कोई जानदार चीज़ सुनाने जा रहे हो। इसीलिये इतना सब....लेकिन जब चीज ही जानदार होगी तब इतनी सारी पेशबन्दी की क्या जरूरत! कहते हो कि दुनिया बारीक, महीन होती जा रही है, शार्टकट लोगों को पसन्द है फिर उसे भूमिका के भवजाल में फँसाना क्या कोई अच्छी बात है?"

"इसके लिये मैं माफी चाहता हूँ। जी, तो सुनिये—लेकिन इतनी बातचीत के दौरान में भी मैं कोई कहानी गढ़ने में फेल रहा। इस लिये आप बीती ही सुना रहा हूँ...."

"यह तो और बढ़िया बात है क्योंकि इसमें वास्तविकता का अंश अधिक और कल्पना का पुट कम होगा।"

"जी, आप तो 'अमेचर क्रिटिक' ठहरे। खैर, तो यह उन दिनों की बात है जब घर छोड़कर मैं घरवालों के कथनानुसार "बहेड़े का बीया फोड़ रहा था" यानी आज से करीब चार साल पहले। उसी वक्त मुझे 'ब्लड प्रेसर' से प्रायः बेहोशी के दौरे से परीशान हो जाना पड़ता था। इसीलिये परदेश में मुझे एक ऐसी जगह की तलाश करनी पड़ी, जहाँ बेहोश होने पर कोई हमदर्द मुँह पर ठंढे जल के छींटे मार सके। फुटपाथी जिन्दगी में कहीं सड़क के किनारे बेहोश होकर गिर पड़ने वालों का फौरी इलाज राहगीर जूता सुंघा कर करते हैं और कम से कम इस स्थिति को मैं अपनी जिन्दगी में नहीं आने देना चाहता था। जी, तो मुझे जगह मिल गयी। और वह जगह कल, पाखाना, बत्ती, रेडियो, कमरा, टेबुल, कुर्सी, आलमारी, चारपाई, बिस्तर और बने बनाये सुस्वादु भोजन के कारण मुझे उतनी जानदार नहीं लगी जितनी कि उस घर की घरनी के सरल, सहज, स्नेह, सौहार्द्र एवं सद्भावनापूर्ण बात-व्यवहार से। आप कहेंगे, वह कौन? वह, वह है मानवी लेकिन उसका यह नाम नहीं। मैं उसका नाम अब से रखे देता हूँ— 'कल्याणी'। सिर्फ उसकी इतनी सी ही तस्वीर आपके समक्ष पेश करके आगे बढ़ूँगा। उसके बारे में बातें करूँगा तो बयान बढ़ जायगा। वह मेरे महाग्रन्थ का मसाला है। कुछ पंक्तियों से भी उसकी तस्वीर आपके सामने रख सकता हूँ लेकिन अपना मन तो भरेगा नहीं। फिर भी इतना तो बताता ही जाऊँ ताकि आपके मन में किसी ऐसे गलत किस्म के कौतूहल का जन्म न हो जाये, जो मेरी जिन्दगी की तस्वीर को ही धुँधला बना डाले। इसलिये सुनिये, वह मेरी, और कोई नहीं, छोटी बहिन है। अपने माँ बाप के हमी दो हैं। हम दोनों आपस में भाई बहिन भी हैं, भाई-भाई भी हैं। उसकी तारीफ में मुझे इतना ही कहना है कि उसने मुझे माँ का सुख दिया है मगर है वह भी जरा जिद्दी टाइप की। इसीलिये मुझसे और उससे अब भी कभी-कभी ऐसा

झगड़ा हो जाता है कि देखने वाले त्राहि-त्राहि करने लगते हैं और क्षणभर में ही इतना मेल हो जाता है कि इसे भी देखकर, सच कहता हूँ, लोगों के दाँत बैठ जाते हैं। कहने वाले तो मुँह पर कह देते, "दोनों ऐसा लड़ते हैं जैसे 'तरपरिया' हों।" झगड़ा जिद को ही लेकर तब भी होता था और अब भी।

"जी, तो उसी की जिद की कहानी है लेकिन ताली जैसे बिना दोनों हाथ के बजती नहीं वैसे ही, मैं भी कभी-कभी किसी जिद पर अड़ जाता था। और एक बार ऐसी ही एक बात पर मैं भी जिद कर बैठा। उसकी बुनियाद क्या थी, अब यह बताना जरूरी है। बात यह है कि उन दिनों मैंने थोड़ा-थोड़ा लिखना शुरू किया था। इसलिये पढ़ता बहुत ही ज्यादा था। पैसों का टोटा पड़ना स्वाभाविक था। फिर घर से सिर्फ टिकट के पैसे लेकर चला था। जिद्दाजिद्दी में घर छोड़ा ही था। मेरे स्वाभिमान को मेरे जिद ने ताकत दी। रीढ़ की हड्डी झुकने न पाये, इस बात का बराबर जैसे कोई मुझे चेत कराता रहता था। लेकिन पैसे की पग-पग पर जरूरत पड़ती ही है। शाम को दो-तीन घण्टे के लिये बाहर जाना ही पड़ता था, अखबार पढ़ने, मित्रों से मिलने। इसी बहाने घूमना भी हो जाता था और मेरी 'कल्याणी' का आदेश था कि मैं जहाँ भी जाऊँ, वहाँ रिक्शे पर ही, पैदल नहीं ब्लड प्रेसर के कारण। इस तरह मेरे साहित्यिक क्षेत्र के मित्रों से, मेरे भावी प्रकाशकों से मुझे कभी-कभी कुछ पैसों का जुगाड़ कर ही लेना पड़ता था और उसी को जुगत से खर्च करता था। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि सारे के सारे पैसे साफ हो जाते और पाकेट में पाई भी न बच रहती। उस दिन मैं बाहर निकलता ही न था। लेकिन इस चीज को वह कल्याणी न जाने कैसे भाँप जाती थी। उसकी अन्तर्दृष्टि को मैं क्या कहूँ? पैसे के अभाव में जब एक दिन बाहर घूमने न जाता तो दूसरे दिन अनायास मेरे जेब में

टूटे हुये पैसे पड़े मिलते। एक दो बार तो मैं नहीं बोला लेकिन मेरी मुसीबत चार छै महीने के पहले खतम होने वाली नहीं थी। इसलिये सोचा, यह काम बिलकुल गलत है। मैंने उसे डाटा। पहले उसने बहाने बनाये फिर अपने-पराये की दुहाई देकर लगी ऐसी-ऐसी बातें कहने कि मैं चुप हो गया। लेकिन मैंने उससे कह दिया कि वह मेरे साथ इस ढङ्ग की उदारता बरत कर मुझे आगे बढ़ने से रोक रही है। और यहाँ रहकर मेरी तरक्की अगर रुकती है तो मैंने जैसे घर छोड़ दिया, वैसे ही यह स्थान भी छोड़ दूँगा। तब वह थोड़ा सहम गयी और उसने झूटा वायदा किया कि अब मैं कभी भी आप के जेब की न तो तलाशी लूँगी और न उसे खाली देखकर उसमें फुटकर पैसे ही रखूँगी।"

"अभी कहानी तो शायद नहीं शुरू हुयी ?"

"कहानी तो एक सतर की होती है लेकिन उसके साथ, आप जानते ही हैं, और भी बहुत-सी जरूरी बातें बतानी पड़ती हैं।"

"तो कल्याणी ने फिर कभी भी जेब में पैसे नहीं रखे ?"

"वह महा जिद्दी लड़की भला कब मानती। हाँ, एक दिन की बात है, मैं अपने पढ़ने वाले कमरे में सुबह से शाम तक पढ़ता-लिखता ही पड़ा रह गया। चाय पीने भी बाहर नहीं जा सका। बरसात का जमाना था। फिर तीन-चार रोज से जो जोरों की बरसात शुरू हो गयी थी कि कुछ न कहिये, इन तीन-चार दिनों में हुयी मूसलाधार वृष्टि से दुनिया का सारा कारोबार ठप्प पड़ गया था। मैं भी दो दिन से बाहर नहीं निकला था। लेकिन आज तो निकलने के लिये मैं बिलकुल तैयार हो गया था। छोटी-बड़ी सभी रेलवे लाइनें बन्द हो गयी थीं। पूर्वी-जिलों में बाढ़ एवं अतिवृष्टि के कारण हाहाकार मच गया था। शहर में हजारों की तादाद में नये-पुराने मकान ढह जा चुके

थे। बाढ़ में कितनी जानें चलीं गयीं। अखबार का अखबार बाढ़ की समाचारों में डूबा-सा जान पड़ता था। उसी वक्त शाम को हिन्दी का एक दैनिक आया जिसमें उल्लिखित बाढ़ की बिभीषिका से होने वाली तबाही की खबरों से मेरे रोंगटे खड़े हो गये, आँखें भींग गयीं और जन-जीवन के सर्वनाश को देखकर मेरा दिल हिल गया, कलेजा सूख गया। मन का पोर-पोर सम्वेदना से व्याकुल हो उठा। मैं कलम घिस रहा हूँ और बाहर मानव कुत्ते-बिल्ली की मौत मर रहा है? मेरा मन आर्त हो उठा, आर्द्र हो उठा। भावावेग में उठा, बगल के कमरे में खूँटी पर टँगे कुरते को उतारा, उसे पहना, चप्पल चटकाते हुये उस बड़े से तिमञ्जिले मकान की तङ्ग और छोटी-छोटी सीढ़ियों से उतर कर सड़क के फुटपाथ पर आकर रुक गया। तब तक बूँदें नहीं टूटी थीं। झींसी पड़ ही रही थी और रह-रहकर दो-दो चार-चार मिनट के इन्टरवल के साथ पट-पट करके बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ जातीं और पानी का एक लहद्दर बरस जाता था।

"संयोग की बात थी कि उसी वक्त दूसरी तरफ से मुझे एक रिक्शा आता दिखायी पड़ गया। मुझे घर से चार फर्लाङ्ग पर जाना था। और सो भी किसी बहुत जरूरी काम से नहीं। यही अपने होने वाले एक पति नहीं, प्रकाशक महोदय से महज मुलाकात करने क्योंकि जाने क्यों वह मुझे बेहद प्यार करते थे और अब भी उनका वैसा ही ख्याल बना रहता है लेकिन तब वह अपनी तर-तबीयत के कारण मुझे मानते थे और अब इसलिये कि मैं उनकी सक्रिय सेवा करने लगा हूँ। कहने का मतलब इतना ही कि ऐसी भयानक बूँदाबाँदी में मैं कोई आटा दाल चावल इन्धन खरीदने नहीं निकला था। मेरा निकलना बिलकुल बेजरूरी था लेकिन उस वक्त मेरे लिये यही बहुत महत्वपूर्ण था। जी, तो वह रिक्शे वाला आकर मेरे पास रुक गया और तब तक पानी का एक गहरा झोंका आ गया। वह भी रिक्शा

छोड़कर उसी सायबान के नीचे आकर खड़ा हो गया, जहाँ मैंने पहले से पनाह ली थी।

"अब जरा उस रिक्शे वाले और उसके रिक्शे पर गौर करें। रिक्शे वाला—एक तीस-पैंतीस साल का आदमी, स्याह रङ्ग, दुबला-पतला, फूँक दें तो उड़ जाय लेकिन पहिनावा उसका जरा विचित्र था। सर पर उसके एक खासा घेरेदार हैट था। वह भी ताड़ के पत्तों का बना था। मामूली-सी फटी बनियायन और नेकर, कोई फटा-पुराना वाटरप्रूफ भी था उसके पैरों में। बीड़ी फूँकते हुये उसने मुझसे कहा—

"बाबू जी, कहीं चलेंगे ? यकीन करें, एक बूँद भी आप के बदन पर पड़े तो रिक्शा चलाना छोड़ दूँ।"

उसकी शकल को गौर से देखकर मेरी निगाह उसके रिक्शे की तरफ गयी। तुरन्त उसने कहा—

"रात भर मेहनत करके मैंने इस रिक्शे को इस ढङ्ग का बनाया है।"

"मैं चुपचाप उसके रिक्शे की विचित्र बनावट देखने लगा। हैन्डिल में लकड़ी का एक डण्डा लगाकर उसी के सहारे रिक्शे की सीट से हैन्डिल तक ढँक लेने वाला उसने एक चन्दोवा तान रक्खा था और वह भी कैनवस का नहीं, सहज ताड़ के लम्बे-लम्बे पत्तों और सरई की फूस की मदद से। सचमुच इससे उसकी तो सुरक्षा बरसात की बूँदों से होती ही थी, सवारी की भी हिफाजत हो जाती थी। फिर इस ढङ्ग का निराला रिक्शा सड़क पर और कोई दिखायी भी नहीं देता था।

"जैसे खरबूजा खरबूजे को देखकर रङ्ग पकड़ता है वैसे ही मेरे जैसे विचित्र आदमी को एक विचित्र रिक्शा वाला, एक विचित्र रिक्शा लेकर ही जब मिल गया तो भला मैं क्या करता। बस, न

कोई बात, न कोई मोल-तोल, तुरन्त पानी में भींगते हुये जाकर उसके रिक्शे पर सवार हो गया और कहा कि चलो। उसने भी कुछ पूछा नहीं। बस बीड़ी फेंककर अपनी सीट पर जा पहुँचा और चौक की ओर चलने लगा।

"मैं जरा और गौर से रिक्शे को देख ही रहा था कि इतने में हरहराकर पानी का एक अच्छा लहदर बरसने लगा। लेकिन क्या मजाल कि मेरे या रिक्शे वाले के बदन पर एक बूँद भी पानी आ गिरे। बौछार के लिये तो कोई कसम नहीं खाता मगर मुझे उस रिक्शे में बड़ा ही सुख मिल रहा था। दूकानों में जहाँ-तहाँ बैठे लोग उस अजीब रिक्शे की बनावट पर चौंक उठते और उसकी ओर उँगलियाँ उठाते। मैंने सोचा, जरा बाढ़-बूड़े की खबरें इसी से कुछ मालूम करूँ। बोला—

"क्यों भई, पानी तो खूब बरसा।"

"बाबू जी, कुछ न पूछिये। 'परलय' हो रहा है और इसमें मरन है हम गरीबों की। दिन भर कुँआ खोदना और पानी पीना।"

"इस रिक्शे का क्या चार्ज...."

"चार्ज की न पूछिये। मालिक इसका बहुत नेक है। जो मैंने दे दिया सो उसका नहीं तो हमारा। तभी तो इतना मन लगाकर इतनी बरसात में भी कमाने निकला हूँ। देखिये, सड़क पर कोई रिक्शा दिखायी दे रहा है?"

"अपना पेट भी तो भरना है तुम्हें।"

"सो तो है ही बाबू जी! पेट बड़ा पापी है, चण्डाल है, फिर अपना ही तक हो तो कोई बात नहीं। घरवाली है, पाँच-पाँच छोटे-छोटे बच्चे हैं, बूढ़ी माँ है और कमाने वाला अकेला मैं। रात भर जाग कर बिहान किया है। खाली पेट सो जाना तो कोई बड़ी

बात नहीं। यह तो अक्सर होता ही है लेकिन मकान की कोठरी की कच्ची दीवार अब गिरी कि तब गिरी, इसका खुटका बुरा होता है। एक छोटी-सी कोठरी है जिसमें हम आठ प्राणी रहते हैं। उसके बगल में थोड़ी-सी सीढ़ी के नीचे जगह है। वहीं रिक्शा रक्खे था। घर वाली तो इसलिये बाल-बच्चों के सङ्ग जागती रही कि कोठरी की दीवाल काफी जुल-जुल हो गयी है, कच्चा खपरैला इतना चू रहा था कि जरा भी सोने की जगह बच नहीं रही और मैं रात भर जाग कर इसी रिक्शे को बनाता रहा क्योंकि तीन रोज तक पानी से घर में बन्द बेकार बैठा रहा। घर में खर्चा नहीं रह गयी, रात को रूखी-सूखी दो चार कड़ी-कड़ी रोटियों के टुकड़ों को चबाकर बच्चे जैसे-तैसे सो रहे लेकिन मेरी बिना दाँत की बूढ़ी बहरी माँ से वे रोटियाँ भी न टूटीं। पैसा भी नहीं था कि जाकर सामान खरीद लाता।" कहकर वह चुप हो गया।

"इसी वक्त मुझे जैसे एक झटका-सा लगा। अरे! रिक्शे पर तो बैठ गया लेकिन इसे पैसे कहाँ से दूँगा? पैसे तो मेरे भी....कभी के खतम हो गये थे। तुरन्त कुर्ते की जेब में हाथ डाला। पैसे नदारत। पैसों का अभाव, रिक्शे वाले की गरीबी, मेरा धर्म सङ्कट यही सब सोच ही रहा था कि इसी समय कल्याणी की मूर्ति सामने आ गयी। सोचा मैंने, रोज-रोज जिद करके जेब में पैसे डाल देती थी लेकिन इसीलिये मैं उसे जिद्दी कह कर उससे झगड़ता रहा हूँ। काश! आज भी वह जिद करके मेरे अनजाने ही जेब में पैसे छोड़ दिये होती तो भला उन पैसों का कितना अपूर्व सदुपयोग हो जाता। फिर यह गरीब मेरे जैसे सफेद पोश को बिना पैसे का कङ्गाल जानकर क्या सोचेगा। इसका दिल तो वैसे ही टूटा है। दुनिया के उखड़े हुये लोगों में से तो एक यह है ही लेकिन मेरा हाल जानकर तो इसका दिल ही बैठ जायगा। इतना ही नहीं, कहीं, झल्ला भी न

उठे। बुरा किया जो मैंने ज़िद करके कल्याणी को रोका। अच्छा, कोई बात नहीं, चलो, प्रकाशक महोदय तो मिलेंगे ही।

वहाँ जब पहुँचा तो उनकी दूकान ही बन्द मिली। भला ऐसे में कौन अपनी दूकान खोलने जाता है। अब क्या हो? कोई मुलाकाती भी नहीं दिखायी दे रहा था। लेकिन इसी वक्त फिर जोरों की बारिश शुरू हो गयी। रिक्शे वाले को वापिस घर लौट चलने को कहा। रिक्शा मुड़ा और जिस रास्ते से आया था उसी पर फिर चल पड़ा।

कोई बात नहीं, घर पर चलकर कल्याणी से पैसे माँगकर इसे दे दूँगा लेकिन अब तक तीन-चार महीने हो गये थे लेकिन कभी मैंने उससे पैसा माँगा नहीं था। इसलिये यह भी मेरे लिये एक कठिन समस्या थी। फिर सोचा, वह मेरा कहीं मज़ाक न उड़ाये लेकिन जो भी हो,...या इस रिक्शेवाले से कह दें कि दूसरे दिन यहीं से आकर पैसे ले जाना? बोला—

"यहीं पास में ही रहते हो न?"

"जी हाँ, आपके मकान से कोई सौ कदम उत्तर।"

"हाँ, आज दिन में कितने की मजूरी की?"

"कुछ न पूछिये सरकार। आज का दिन ही कुछ अजीब रहा। इतना अच्छा रिक्शा लेकर ऐसे आँधी-पानी में मैं निकला और सुबह आठ बजे से अभी तक मुश्किल से एक रुपये मिले हैं। बात यह हुयी कि पाँच छै घन्टे तक तो इसकी मरम्मत ही करता रहा। इससे 'एक्सीडेन्ट' हो गया था। कहिये जान बच गयी।"

"हाँ, हाँ, यह सब तो होता ही है," कुछ रुखाई से मैंने जो जवाब दिया कि वह चुप होकर अपने काम में फिर से लग गया। और अपनी स्पीड को तेज़ कर घर की ओर बढ़ने लगा।

मेरा भी दिल तेज़ी से उड़ने लगा। ज्यों-ज्यों घर नजदीक आता जा रहा था, त्यों त्यों मेरी बेचैनी बढ़ती ही जा रही थी। बस में अपने

को, अपनी जिद को कोसता रहा रास्ते भर। आखिरकार रिक्शा आकर मकान के दरवाजे पर ही रुक गया। मैं उतर पड़ा। पानी तबतक काफी थम चुका था। एक जेब में हाथ डाला। क्या करता? उसे यकीन दिलाना था न कि मैं पैसे लेकर चलना भूल गया हूँ। उस जेब के कागज-पत्तर के पर्त-पर्त को उलट डाला लेकिन पैसे हों तो दिखाई पड़ें। पैसे तो बोलते रहते हैं। उनकी झनझनाहट के स्वर कहाँ छिपाये जा सकते हैं? खैर, उस जेब के कागजात देख चुकने पर दूसरी जेब में हाथ डाला। उसके भी कागज सरसरी तौर पर देखकर उन्हें जेब में रखने ही जा रहा था कि दो कागजों के बीच में मुझे एक रुपये का एक नोट छिपा हुआ दिखायी पड़ गया। बस क्या! दिल उछल पड़ा मेरा। वाह! कल्याणी तेरी जिद ने आज मेरी आबरू रख ली। उस नोट को निकाला और उसे पूरा का पूरा रिक्शेवाले को देकर बड़े ताव व तपाक से घर में जाने लगा। मेरे पैरों में पंख लग गये थे। पैर जैसे धरती पर पड़ते ही नहीं थे लेकिन इसी बीच रिक्शेवाले ने मुझे टोक कर कहा—

"बाबू, फुटकर पैसे मेरे पास नहीं हैं।"

"तो क्या हुआ? पूरा रुपया तुमको दे दिया है।"

"लेकिन किराया तो महज चार आना हुआ। मान लीजिये बरसात की वजह से छै आने लेकिन दस आना तो आपका निकलता ही है। किसी दूकान से इसे तुड़ाकर आपको दे देता हूँ।"

"नहीं, नहीं, इसकी क्या जरूरत?"

"बाबूजी, यह नहीं हो सकता! ऐसा करना होता तो बिरलाजी के दरवाजे पर जाकर अपाहिजों की लाइन में मैं भी खड़ा होकर कुछ पा सकता था लेकिन आखिर मैं तो यह सब कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। जिन्दगी से जूझ ही रहा हूँ।"

"नहीं-नहीं, तुम बड़े नेक हो।"

"यह सब ठीक है लेकिन पैसा आप अपना लेकर ही जाइये। इसे आप बाढ़ पीड़ितों के चन्दे में भेज दीजियेगा।"

मैं अवाक् हो गया, उसकी बातें सुनकर। बोला—

"बड़े जिद्दी हो जी।"

"जो भी समझें, कहें, आप बड़े लोग हैं लेकिन पैसे लेते जाइए।" मजबूरन मुझे बाकी पैसे लेने ही पड़े। मैं घर में गया और बस मेरी कहानी भी खतम हुयी समझिये।"

"क्या तमाशा करते हो? कल्याणी से तुमने इन बातों को नहीं बताया?"

"तब से अब तक क्या-क्या हो गया कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। यह जीवन ही प्रवाह है। चेतना का प्रवाह है। इसका भला कभी अन्त होता है।"

"ठीक कहा। बहुत ही बारीक बातें रहीं तुम्हारी। इतनी सूक्ष्म दृष्टि से काम लेते रहे तो दुनिया में एक दिन तुम बहुत कुछ कर गुजरोगे। महान् कार्य कर जाओगे।"

"लेकिन आपके लिए क्या? घर की मुर्गी साग बराबर।"

"अरे भाई खफा न हो। क्या चाहते हो?"

"बस इतना ही कि आप रधिया के मामले पर पुनर्विचार करें। उसकी गल्ती हो, उसे निकाल बाहर करें। वह निर्दोष हो तो उस गरीब बेकस औरत को उसकी जगह पर बने रहने दें ताकि अपनी अस्मत बचाये रखकर वह अपने लँगड़े पति की परवरिश करती रह सके।"

"अच्छी बात है। भला तुम जिद्दी आदमी ठहरे। आखिरकार तुम्हारे आगे मुझे अपनी जिद छोड़नी ही पड़ी।"

"बड़े भाई, देखना इसका परिणाम बहुत ही अच्छा होगा।"

"बस-बस, चुप रहो। तुम बहुत परेशान करते हो।"

"ऐसा न कहिये बड़े भाई! अच्छा, आपको भी देर होती होगी।

आज्ञा दें, फिर आऊँगा।" अभिवादन करता वहाँ से उठा और घर को चल पड़ा।

४

अपने बारे में थोड़ा तथा औरों के बारे में ज्यादा बोलो। इस आशय की बात मैंने बड़े-बूढ़ों के मुँह से कभी सुनी है और पढ़ी भी है। लेकिन आगे चलकर इस कथा प्रसङ्ग में मैं भी कहीं गैर मामूली शख्स न जान पड़ने लग जाऊँ क्योंकि कथा प्रवाह और गतिशील जीवन का कोई ठिकाना नहीं; दोनों रुकते नहीं; आगे ही निरन्तर बढ़ते जाते हैं; इसलिए फालतू बातों को बालाये ताक रख मैं चन्द मोटी-मोटी बातें अपने सम्बन्ध में कह देना चाहता हूँ। वे बातें भले ही शोख़ हों लेकिन इनके जरिये कोई शेख़ी बघारने का मन्तव्य नहीं है मेरा। और जिनकी समझ में ऐसा कुछ आ जाये उनसे मैं पहले ही से माफी माँग लेता हूँ।

नाम : इसका महत्व तिल के बराबर भी नहीं आजकल। इसलिए नाम जैसी फालतू बात की क्या दरकार! काम के पीछे नाम चलता है आज की दुनिया में।

खून और खानदान : ये बातें भी अब उतना माने नहीं रखतीं क्योंकि जमाना इल्म और हुनर का आ गया है। खानदान के अदने-पन और आलेपन की बातों के दिन अब लद गये और इसकी ताकत पर ज़िन्दा रहनेवाले लोग, अव्वल तो अब रह ही नहीं गये हैं, और जो कुछ, मान लीजिए, थोड़े-बहुत हों भी, तो उनका जिन्दा रहना, न रहना दोनों बराबर। सब धान बाईस पसेरी वाली बात है भाई।

होशियार हो, विद्वान् हो, आँखों में रोशनी है तो रास्ते को पहचानो, अपने को पहचानो, अपने आप रास्ता बनाओ और ऐसा रास्ता बनाओ कि खुद भी चलो और तुम्हारे पीछे-पीछे दुनिया के और लोग भी चलें। और तब क्या पूछना रहेगा! तुम्हीं तुम दिखायी पड़ोगे। जी, अब ऐसा ही समय है। फिर भी नया इतिहास बनाते वक्त जैसे इतिहास के पुराने पन्ने जलाये नहीं जाते, वैसे ही खून-खानदान और उसके सम्बन्ध की बीती बातें एक पुश्त 'वाले' अपने दूसरे पुश्त को सौंपते चले जाते हैं। और हर पीढ़ी अपनी पुरानी बातें सहेज-सम्भाल कर रखती जाती है। यहाँ तक तो ठीक है। मैं भी इसी ख्याल से कुछ अपनी खानदानी बातों का बयान करने जा रहा हूँ लेकिन इसका यह मतलब हर्गिज कोई न लगाये कि आज जो कुछ मैं हूँ या कल दिन जो हो जाऊँगा, उसमें मेरा प्रयत्न पीछे और पीढ़ी की अमिट यश-कीर्त्ति पहले।

जी, दस-बीस मुसल्लम गाँवों की जमींदारी की आय पर मेरे खान-दान का सारा वैभव कायम था। लगान की शकल में रुपये आते थे। गल्ले रखने को धरती फोड़कर बड़े-बड़े 'गाड़' बनाये गये थे। वो रङ्ग और दबदबा था कि आज से ५०–६० वर्ष पहले क्या मजाल था कि कोई अदना से अदना या आला से आला इन्सान, चाहे वह मामूली किसान हो या जिले का कलक्टर, मगर गरदन ताने, छाता लगाये, कोट के सामने से गुजर जाय। खानदान के सबसे बड़े-बूढ़े बुजुर्ग से मिलने के लिये जिले का नया कलक्टर सबसे पहले आ जाता तब वह स्वयं जाते। लेकिन वह बुजुर्ग पढ़े-लिखे नहीं थे ज्यादा। हँसने की बात नहीं, उनके घोड़े की पूँछ में इत्र गुलाब जल की तरह छिड़का जाता था। और साठ-सत्तर मील की लम्बी दौड़ लेकर वही घोड़ा इलाहाबाद के चौक में पञ्जाब मेल के साथ पहुँचता था।

लेकिन किस्सों से क्या! जैसे मुल्क के सारे जमींदार गलत रास्ते

पर चलकर बर्बाद हो गये वैसे ये लोग भी। आज जैसे सारी जमींदारियाँ टूट गयीं वैसे ही मेरे खानदान की भी। और अब तो सभी को खाना-कमाना ही रह गया है।

मगर मैं देहाती नहीं हूँ लेकिन मुझे शहराती भी नहीं कहा जा सकता। वह आबादी जहाँ मेरा मकान है बड़ी ही बेढब जगह पर स्थित है। न जमीन में, न आसमान में। शहर की म्युनिस्पल सीमा के अन्दर होते हुए भी मेरे गाँव या मुहल्ला, इसे जो भी कहिये, का नक्शा गाँव-गँवई सा ज्यादा और शहर-सा कम मालूम होता है। आबादी के तीनों तरफ देहाती इलाका है, वह भी सौ-सौ दो-दो सौ कदम पर शुरू हो जाता है। सौ-पचास घरों की जो भी बस्ती है वह तीन तरफ ताल-तलैयों से घिरी रहती है और बरसात में सिर्फ निकलने का रह जाता है एक ही रास्ता जो कुछ पक्का और कुछ कच्चा है; जिसे पगडंडी तो नहीं कह सकते लेकिन उसे सड़क कहकर सभ्यता और म्युनिस्पल बोर्ड के मुँह पर कालिख भी नहीं पोतना चाहता। इस बस्ती की बनावट बिलकुल देहात-सी है लेकिन इसमें बिजली की रोशनी का भी अब इन्तजाम हो गया है।

मेरा मकान कभी कच्चा था लेकिन अब तीन चौथाई पक्का हो गया है। मेरे मकान और दिल दोनों की हालत एक-सी है। दोनों अभी थोड़े-थोड़े कच्चे हैं। बिलकुल पुख्ता न यही हुआ है और न वही। होंगे तो दोनों ही और न होंगे तो दोनों ही।

परिवार वाला आदमी हूँ। मध्यवर्गीय समाज है मेरा। बीवी-बच्चे, माँ-बाप, भाई-बन्धु सभी हैं। कुछ थोड़ी-सी खेती-बारी भी होती है लेकिन इससे रुपये नहीं जोड़े जा सकते। बस उतना ही गल्ला हो जाता है कि 'बासी बचे न कुत्ता खाय'। मैं रुपयों से परिवार की मदद करता हूँ। और इधर तो मेरा आर्थिक सहयोग दिनोंदिन मेरे घर के हर प्राणी को प्रसन्न रखे है। कोई घर का काम देखता है तो कोई

खेती, कोई लड़का बड़े दर्जे में पढ़ता है तो कोई छोटे। मैं प्रवासी हूँ। बराबर उनकी खोज-खबर लेता रहता हूँ और इतना तो लगाव रखता ही हूँ कि उन्हें पैसों की तकलीफ न होने पाये और इससे ज्यादा मैं कोई दिलचस्पी न लेता ही हूँ और न लेना ही चाहता हूँ क्योंकि मेरा काम है साधनापूर्ण जीवन यापन करना। मैं एक छोटे से परिवार को केन्द्र-बिन्दु बनाकर उसी की तरक्की में मर खप जाऊँ, सारी दुनिया, उसकी हलचलों को नजर अन्दाज करके? यह मुझसे नहीं होने का। चौबीस घन्टों में मुझे बारह घन्टे पढ़ने-लिखने को चाहिये। बाकी वक्त बाकी काम के लिए क्योंकि जिन्दा रहने के लिए और भी काम करने ही होते हैं। एकान्त में साधना करनेवालों को जरा भी शोरगुल सह्य नहीं होगा। इसलिए कहीं कोने में चुपचाप बैठकर साधना कर रहा हूँ और शान्ति बिना साधना के सम्भव नहीं।

लेकिन साधनावाली बात भी मैंने फिजूल ही कही। घर पर तीन रोज से आया हूँ। मि० खन्ना के यहाँ दो रोज से दौड़ रहा हूँ। देखिए, बेचारे का काम हो गया तो बड़ा ही अच्छा होगा। घर पर मेरे पीछे इसी किस्म की मुसीबतें लगी रहती हैं। बाहर मुझे कोई तङ्ग करने वाला नहीं लेकिन यहाँ की बात और है। यहीं की धूल-मिट्टी में पला हूँ। फिर अपना स्वभाव भी कुछ ऐसा है कि व्यर्थ में किसी की मुसी-बत सुनकर द्रवित हो जाता हूँ और दौड़ पड़ता हूँ।

देखिये वह सामने, कौन आ रहा है? शिलाजीत की चट्टान जैसी उसकी देह है। यह हमारे गाँव का एक भूमिहीन किसान है। इसकी उमर कोई तीस साल की होगी। हट्टा-कट्टा है, गोलमटोल बदन है, हँस मुख है। मैं बचपन से ही इसे बहुत ही मानता रहा हूँ। इतना जीवटवाला आदमी होकर आज इसकी हालत बहुत ही दयनीय हो गयी है और यह बात है पाँच साल पहले की।

देखते नहीं, वह बैसाखी लगाकर खटाखट चला आ रहा है और

अब तो वह काफी फुर्ती से चल लेता है। रेलवे एक्सीडेन्ट में उसका एक पैर आधा कट गया। खलासी था रेलवे में। कुछ पैसे भी मिले थे लेकिन मर के जिया हुआ आदमी था। अपने को खड़ा करने में ही सारे पैसे खर्च हो गये। इसके पास एक इञ्च जमीन नहीं रह गयी है। माँ-बाप इसके नहीं रहे। अब इस वक्त कुल दो प्राणियों का इसका परिवार है।

खुद है, लँगड़ा बना हुआ और दूसरी है इसकी पत्नी। उसकी उमर यही कोई पचीस की होगी। दस बरस उसे आये हुये हो गया लेकिन कोई बाल-बच्चे नहीं हुए। इस लँगड़े की यही लकड़ी है। इसीका नाम है रधिया।

अब तक पास आ बैसाखी किनारे रखकर, दरवाजे के सामने चार छोटे-छोटे पत्थर के पैरों पर पट्ट पड़े एक लम्बे-चौड़े प्रस्तर खण्ड पर—जिसपर लोग बैठते भी हैं और गर्मी में लेटते भी हैं—विराजमान हो गये आपके महतो सुखईराम। उसके बैठते ही मैं बोला—

"अरे सुखई! मैं तो आ ही रहा था। कौन-सी ऐसी जल्दी पड़ी थी।"

"अरे भइया जी! जितनी मेहरबानी आप कर रहे हैं वही बहुत है।"

"अरे भाई, कुछ नहीं....हाँ, तो खन्ना जी तो कुछ रास्ते पर आ गये।"

"क्या कहते हैं भइया जी आप भी! मनोजर।" कहकर विचित्र ढङ्ग से हँसने लगा।

"नहीं, नहीं, अब तुम्हारा काम हो जायगा।"

"आप लगे हैं। इसलिये चाहे जो न हो जाय लेकिन खन्ना साहेब का नाम न लें। विश्वास नहीं होता कि वह प्रिन्सिपल की बात काटकर रधिया को बहाल कर देंगे।"

"उन्हीं तक तो खुदाई नहीं है। कमेटी भी तो है।"

"कमेटी-समेटी सब उनके ही हाथ का खिलौना है भइया। आप जानते हैं कि नहीं। खन्ना जी की सास माँ लक्ष्मी देवी ने उनके कहने पर कालिज को बीस हजार रुपया दान दिया है। इसलिए कमेटी उनके खिलाफ नहीं जायगी।"

"समझता हूँ। ठीक है, खन्ना ही को दुरुस्त करूँगा।"

"मगर मुझे विश्वास नहीं होता क्योंकि बहुत सी पेंच की बातें हैं जिन्हें आप नहीं जानते होंगे।"

"क्या कोई नई बात है?"

"प्रिन्सिपल और मनीजर खन्ना साहब दोनों एक चना के दो दाल हैं। देवी जैसा वकील साहब की बहू हैं लेकिन वह भी इन्हीं सब बातों से बहुत दुखी रहती हैं।"

"माँ लक्ष्मी की बड़ी बेटी हैं न वह?"

"हाँ-हाँ वही। पति-पत्नी में बहुत ही मनमुटाव रहता है।"

"अच्छा यह बात है तो भाभी भी कोई मदद नहीं कर सकेंगी। तो लक्ष्मी से कहा जाय और उन्हीं से खन्ना की सारी बातें कह दूँ अगर वह न मानें?"

"लेकिन अपने दमाद की शिकायत वह क्यों सुनेंगी? फिर वकील साहब की पत्नी इतना बर्दाश्त करती हैं, इतनी गऊ हैं कि कभी अपने पति की शिकायत नहीं करेंगी। इसलिए आपकी शिकायत का कोई सबूत तो मिलेगा नहीं माँ लक्ष्मी को। ऐसी सूरत में वह अपने दमाद जैसी करेंगी या आप जैसी?"

"ठीक कहते हो लेकिन भाभी से मैं बातें करूँगा। मगर खन्ना इतना गया बीता आदमी है, मुझे स्वप्न में भी ऐसा ख्याल नहीं हुआ था। ऊपर से कैसा बना रहता है और भीतर-भीतर पूड़ी पोता रहता है।"

"तभी तो मैं कहता हूँ कि वह आपकी बात नहीं मानेंगे। और रधिया एक जिद्दी है। प्रिन्सिपल साहब से माफी माँग ले, जो वह कहें, उनकी आज्ञा का पालन करे। बस उसकी बहाली हो जाय मगर वह कुछ सुनती ही नहीं।"

"मुझे सारी बातें मालूम हैं। प्रिन्सिपल साहब कहें कि भाड़ में कूदो तो क्या वह भाड़ में कूदने जाय?"

"यह क्यों कहने जायँगी वह।"

"देखो! बड़े बच्चा की माँ से मुझे सारी बातें मालूम हो गयी हैं। रधिया देवी है।"

"तो क्या मैं उसे कहता हूँ कि वह राक्षसी बन जाय।"

"और नहीं तो क्या? उनकी बात माने तो अपनी अस्मत बेचे, सतीत्व को नीलाम पर चढ़ा दे, आचरण की पवित्रता को गिरवी रख कर आटा चावल दाल खरीद लावे और तुम्हारा और अपना पेट भरे। क्यों?"

"भइया जी! आप मुझे जो चाहें कहें लेकिन रोजी रोटी के लिए गरीबों को क्या-क्या नहीं करना पड़ता? चोरी, डाका, जुआ आखिर ये सब क्या हैं? आदमी गरीब है, उसे खाना चाहिये। वह सब करम करता है। वह लगे ईमान, धरम देखने तो मर न जायगा। देवी-देवता, ईमान-धरम यह सब तो पेट भरों की बातें हैं सरकार। उसे समझा दीजिये।"

"कि जाकर वह अपनी आबरू सरेबाजार लुटा दे, उसे बेच दे। क्यों?"

सुखई सन्न हो गया और चुप हो रहा।

"क्यों, बोलते क्यों नहीं?"

"मैं क्या बोलूँ भइया जी, पुरुषारथ ही नहीं रहा नहीं तो टँगारी से दो टुकड़े कर देता उसे जो मेरी रधिया को जरा भी ऊँचा नीचा देखने की हिम्मत करता।"

"पैर खराब होने से तुम्हारा हिम्मत और हौसला टूट गया है। क्यों? ऐसा हर्गिज न सोचो। मेहनत करके पेट भरने वाले रास्ते को अपनाया जाता है। और रास्ते में जो मुसीबतें आ जायँ तो उनसे घबड़ाना नहीं चाहिये। तुम सोचते हो, तुममें वह पुरानी ताकत नहीं है। गलत सोचते हो। तुम्हारी सबसे बड़ी ताकत है तुम्हारी बीवी। वही रधिया। वह एक मामूली दाई है कालिज की। तीस-पैंतीस रुपये उसे मिलते हैं। उसीसे वह अपनी छोटी-सी गृहस्थी का सञ्चालन करती है। अदल काम करती है, पैसे पाती है लेकिन उसके सतीत्व से कोई खिलवाड़ करना चाहे तो कम से कम कोई माई का लाल इस दुनिया में पैदा नहीं हुआ है। और इसी दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो अपनी स्त्रियों के सौंदर्य की सीढ़ी लगाकर बड़ा से बड़ा ओहदा प्राप्त कर लेते हैं तथा ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो अपनी चमक-दमक से रिझाकर देखते-देखते सब से नीची जगह से जो छलाङ्ग भरकर ऊँची जगह जा पहुँचती हैं कि देखनेवाले दङ्ग रह जाते हैं। देखो, रधिया दाई है लेकिन उसे उसका सतीत्व प्यारा है। और ऊषा शर्मा प्रिन्सिपल हैं लेकिन सिर्फ इसलिये कि कालेज में जो भी गलत सही हुकुम उनका निकले वह अन्त तक कायम रहे, इसके लिये उन्हें मि० खन्ना के आगे आत्म समर्पण करना पड़ता है। नाजायज अधिकार प्राप्त करने के लिये नाजायज सेवा भी करनी पड़ती है। सतीत्व का मोहत्याग देना पड़ता है। रधिया ऐसी नहीं कि वह आत्म समर्पण करने जाय। देखो, अब तो संघर्ष छिड़ ही गया है। मैं हूँ, खन्ना हैं, प्रिन्सिपल महोदया हैं और रधिया है। इन्साफ मेरे साथ है। इसलिये मुझे कामयाबी मिलकर रहेगी।"

"भइया, आपके सामने मैं क्या बातें कर सकता हूँ। आप उमर में भी बड़े, विद्वान ठहरे, जो उचित समझें करें।"

"महतो, बस पैर पकड़ कर खींचना नहीं। तुम चुपचाप तमाशा देखते जाओ।"

"राम राम कहिये भइया! भला कभी ऐसा हो सकता है।"

"हाँ, हाँ, घबड़ाओ नहीं। देखो सुबह मैं गया था और अभी मैं वहीं फिर जा रहा हूँ। बातें करता हूँ। देखें, क्या कहते हैं। अच्छा तुम जाओ।" कहता हुआ मैं मि० खन्ना से मिलने चला गया।

५

जाड़े की शुरुआत हो चली थी। इसलिये शायद लौटने में देर हो जाय, इसी ख्याल से ऊनी शाल लेना नहीं भूला। यों मैं खद्दर का कुर्ता, खादी की मोटी धोती और सदरी तो पहने ही था। बस दीया बत्ती जलते-जलते तक खन्ना भवन के सामने पहुँच ही गया। अच्छी-खासी, बिल्डिङ्ग थी। सीमेन्ट वाली सड़क उनके मकान के सामने से दौड़ती हुयी दूर पर ग्रैन्डट्रन्क रोड में जाकर मिल जाती थी। पाँच सात सौ रुपयों की आमदनी वकालत से हो जाती थी। घर का घर था। फिर ससुराल वाले इनके धनी असामी थे। इनकी बूढ़ी सास केवल थी वहाँ। उनके बाद वहाँ की सारी सम्पत्ति के यही उत्तराधिकारी होने वाले थे। इनकी एक छोटी साली भर थी। खैर, खन्ना के जिम्मे ससुराल का भी प्रबन्ध था ही।

उनका नौकर दरवाजे पर ही मिला। मैं जाकर वकील साहब के चैम्बर में रखी एक आराम कुर्सी पर इत्मिनान से बैठ गया। नौकर ने

उसी वक्त आकर बताया कि बाबू बाहर गये हैं। तब तक बगल के गलियारे में से कमरे में आती दिखायी पड़ी एक युवती। बस, यही, अठारह बीस के आस पास की उमर वाली। गोरी, मझोले कद की, सुडौल शरीर की, अपटूडेट। उसे मैंने दो साल पहले देखा था और अब तो उसमें हुये आश्चर्यजनक परिवर्तन को क्षणभर मैं निहारता ही रह गया किन्तु तब तक तो हाथ उठाकर मुझको अभिवादन करती पास आकर वह बोली—

"बड़े जीजा तो बाहर गये हैं। आपको जीजी ने अन्दर बुलाया है।"

"अच्छा, अच्छा, चलता ही हूँ लेकिन, दया, तू इतनी बड़ी हो गयी! काफी अरसे के बाद तुझे देखा है न। इसीलिये....।" कहता हुआ मैं जा पहुँचा श्रीमती क्षमा खन्ना के कमरे में।

भाभी को अभिवादन किया और मुस्काते हुये, लजाते हुये उन्होंने मुझे आशीश दिया और पास में पड़ी कुर्सी पर बैठने का इशारा करती हुयी बोलीं—

"गोपू के पिताजी काफी देर से गये हैं। आते ही होंगे। भला इसी बहाने...."

"वाह भाभी! आप भी क्या कहती हैं। क्या बताऊँ, किताबों से फुरसत नहीं कि घर आ सकूँ और जब घर ही बहुत कम आता हूँ तो भला बड़े भाई और आपके दर्शन कैसे करता। एक गाड़ी से काशी से यहाँ आया और दूसरी से लौट गया। कहाँ किसी से भेंट मुलाकात की फुरसत ही मिलती है।"

"फिर भी जो अपने हैं, उन्हें इस तरह नहीं भुलाया जाता। एक वक्त था कि चौबीस घन्टे में दो-दो चार-चार बार अपने बड़े भैया से मिलते रहते थे और आज यह दिन....खैर....थोड़ा चाय नाश्ता कर लो...." कहकर भाभी चली गयीं अपनी पवित्र पाकशाला में।

मेरे ठीक बगल में दया बैठी थी। लेकिन अभी तक वह खामोश रही। अब मैं भाभी के कमरे में टँगे हुये चित्रों को देखने लगा। बापू और माँ कस्तूबा के दो बहुत ही सुन्दर चित्र टँगे थे। उन्हीं पर जाकर मेरी निगाहें रुक गयीं। दया ने ताड़ लिया। बोली—

"छोटे जीजा, यह तस्वीर आपको बहुत पसन्द आयी?"

मैं मन ही मन चौंक उठा। यह लड़की बहुत ही होशियार हो गयी है। बोला—

"अच्छी तस्वीर है। अच्छा दया, तू बी० ए० तो कर चुकी न?"

"जी, छोटे जीजा। अस्वस्थ रहने के कारण इस साल मेरी पढ़ाई स्थगित हो गयी।"

"क्यों दया....?"

"जी हाँ, आज्ञा।"

"देख दया, जरा कायदे से बात कर।"

"कोई अपराध हुआ छोटे जीजा?" कहकर मुस्कुराने लगी।

"पगली, आपस में इतनी 'फार्मेलिटी' नहीं बरती जाती। अच्छा यह बता कि तेरी जीजी क्या चर्खा भी कातती हैं?"

"कुछ न कहिये छोटे जीजा। इतना बारीक सूत कात लेती हैं कि देखिये तो जी खुश हो जाय। इतना ही नहीं, इनका कसीदे का काम तो गजब का होता है।"

"अच्छा तो क्या इधर इन्होंने इस कला में दक्षता प्राप्त की है?"

"जी, कहिये तो उनके कसीदों के कुछ नमूने आपको दिखाऊँ।"

"हाँ, हाँ, ले तो आ।"

"लेकिन वह कहीं नाराज हो गयीं तो आप जानियेगा क्योंकि मुझे चोरी करके लाना पड़ेगा।"

"तू ले आ। मैं देख लूँगा। उनसे समझ लूँगा।"

"अच्छी बात है। पूज्य बापू की 'दण्डी यात्रा' का चित्र कसीदे में जो काढ़ा है जीजी ने कि बस...."

"वही वही ले आ।"

उसी कमरे में शीशे की बड़ी लम्बी आलमारी में से निकाल कर दया ने क्षमा के अद्भुत कसीदे के कई नमूने मुझे दिखाये। गान्धी जी की दण्डी यात्रा वाला कसीदा तो गजब का था। मैं उसे गौर से देख ही रहा था कि इतने में अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया—

"इतनी गुणी पत्नी पाकर भी पति-पत्नी दोनों में मनमुटाव बना ही रहता है। खैर।"

"क्या? क्या? छोटे जीजा इसका क्या मतलब?" दया जैसे बात ताड़ गयी और इतना पूछकर मेरा मुँह ताकने लगी। मैं चुप रहा लेकिन उसकी बेरुखी बाँध तोड़कर फूट ही निकली स्वरों में—वह पुनः बोली—

"छोटे जीजा, चुप क्यों हो गये? मैं भी सारी बातें जानती हूँ, मुझसे न छिपाइये। बड़े जीजा बहुत वैसे आदमी हैं। कहिये कि मेरी जीजी ही ऐसी हैं कि वह निभाये चली जा रही हैं, वर्ना आजकल की कोई दूसरी औरत होती तो इन्हें आटे दाल का भाव मालूम हो जाता। सीधी पाया है जितना चाहें, सता लें।"

अब मुझे अपने आप ही एक ऐसा सूत्र मिल गया था कि जिसकी बाबत बात कर दया, क्षमा, खन्ना सभी के दिलों को टटोला जा सकता था। बोला—

"दया, तुम्हारी जीजी सचमुच देवी हैं लेकिन बड़े भइया उनके साथ सुन्दर व्यवहार नहीं करते। क्यों? दोनों में मनमुटाव रहता होगा।"

"दो साल से यही बात चल रही है लेकिन जीजी बहुत बर्दाश्त करती हैं।"

"आखिर क्या बात है ?"

"बात क्या, कुछ नहीं, बड़े जीजा अधेड़ हो चले लेकिन नाक उन्हें लगी ही है। शराब पीना, रात में देर से लौटकर आना भला यह किसी भले आदमी या सद्गृहस्थ का कर्म है। भाभी अपनी गृहस्थी को नमूने के ढङ्ग पर ले चलना चाहेंगी तो यह बड़े भइया को नहीं जँचेगा। वह जिस काम के लिये उन्हें मना करेंगी उसे वह जरूर करेंगे। जब देखिये, घर में एक हंगामा मचा रहेगा।"

"लेकिन खुलेआम तो ये बातें नहीं होती होंगी।"

"ठीक है, लेकिन एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि बड़े जीजा सब कुछ खुलेआम भी करने लग जाँय। ऊषा शर्मा के यहाँ जाने से जीजी जीजा को रोकती हैं लेकिन लुक छिपकर वह चले ही जाते हैं। सोचिये, वह कालेज की ठहरीं प्रिन्सिपल और आप ठहरे मैनेजर। एक दूसरे को अपनी-अपनी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिये। फिर लड़कियों के शिक्षालय की बात नाज़ुक ठहरी।"

मैं हँस पड़ा और बोला—

"तू तो बड़े-बूढ़ों जैसी बातें कर रही है दया।"

वह झेंपकर चुप हो गयी। इसी समय वहाँ आ पहुँची क्षमा भाभी चाय नाश्ता सभी कुछ लेकर।

चाय नाश्ता के बाद मैंने सोचा, ज़रा भाभी से बातें करके देखूँ। बोला—

"भाभी, मैं बराबर तुम्हारे चेहरे पर उदासी और गम्भीरता ही देखता हूँ। आखिर बात क्या है ?"

इसी समय बीच में ही बोल बैठी दया—"मैं बता दूँ ?"

क्षमा ने आँखें तरेरा। दया चुप होकर वहाँ से जाने लगी लेकिन मैंने उसे हठात् बिठा लिया। बोला—

"भाभी, इसकी शादी का नवेद मुझे भिजवा देना।"

"क्यों नहीं, लेकिन पहले कहीं बात तो पक्की हो।"

"क्यों ? क्या हुआ ? अविनाश के साथ तो बातें पक्की हो गयी थीं न ?"

इतने में दया उठकर वहाँ से जाने लगी। अब भाभी ने उसे पकड़ कर बिठा लिया और बोली—

"सुनती जा, जरा ये सब बातें भी।"

"जीजी छोड़ दो मुझे। मेरे पेट में दर्द है। मैं...."

"तेरी ज़बान कैंची की तरह चलती है। अब बात कर न। दो लोग बात कर रहे हैं और बीच में बिना समझे बूझे आप टपक पड़ेगी।" लेकिन अब तक दया अपनी जीजी से लड़-झगड़ कर उस कमरे से बाहर हो चुकी थी।

मैंने पुनः छेड़ा—

"क्यों भाभी ! तुम क्यों इतनी गम्भीर बनी रहती हो ?"

"कुछ नहीं, कोई बात नहीं, मेरा स्वभाव ही कुछ ऐसा है। मेरी रोनी सूरत ही कुछ ऐसी है।"

"झूठ बोल रही हो। बड़े भइया को मैं क्या कहूँ। इतनी अच्छी देवी को भी पाकर न स्वयं प्रसन्न रहते हैं और न आपको प्रसन्न रख सकते हैं। क्यों भाभी ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"कुछ कारण नहीं बताओगी ? मैं कोई गैर नहीं हूँ। मुझे सब कुछ मालूम है।"

इतना सुनना था कि भाभी का चेहरा तमतमा उठा। वह गम्भीर स्वरों में बोलीं—

"तुम तो बड़े भइया नहीं हो न। उनसे मुझे मिले सुख या दुख, इस बात से और किसी को क्यों हो दिलचस्पी ? हाँ, बड़े भैया की जगह

तुम ले सको तो ले लो। तब मेरे सुख दुःख की गहराई में डूबने की फिकर करना।"

भाभी कह तो गयीं इतनी बड़ी बात लेकिन उसी क्षण उन्हें जैसे पछतावा होने लगा और देखते-देखते उनकी लाल-लाल बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा आयीं और उनसे टपक पड़े मोती के दाने। फिर भाभी ने मेरी ओर नजर उठाया ही नहीं। उनकी आन्तरिक पीड़ा गल-गल कर आँसू बन चू रही थी। उनकी निगाहें फर्श पर जा गड़ी थीं और एक मिनट तक मौन रहने के बाद भर्राई हुयी आवाज में बोलीं—

"भैया माफ करना। भावावेश में इतनी कड़ी बात कह गयीं लेकिन मेरी बनावट ही कुछ इस किस्म की है कि मैं आपके बड़े भइया की कोई शिकायत अपने कान से सुन नहीं सकती। उनका मेरे प्रति जो भी व्यवहार रहे, रहे लेकिन मैं अपना ईमान, धर्म क्यों बिगाड़ने जाऊँ। आज नहीं, कल, कल नहीं कभी भी तो वह चेतेंगे।"

आँसुओं की बरसात से वातावरण गीला हो चला था। पीड़ा पीने की साधनापूर्ण जिन्दगी की अपूर्व मूर्ति क्षमा देवी से अधिक देर तक बातें करना अब मेरे बूते के बाहर की बात हो गयी थी। मेरी भी पलकें भींग चली थीं। चुपचाप उठा, नमस्कार किया और प्रति उत्तर की अपेक्षा न कर मैं सीधे वहाँ से चल पड़ा।

इस वक्त तक नौ बज चुके थे। दया, क्षमा, लज्जा की बातें सोचता हुआ मैं घर लौटा लेकिन रास्ते में ही सुखई महतो का मकान पड़ता था।

उसका छोटा-सा दो-तीन कोठरियों का कच्चा मकान था। मुख्य दरवाजे के सामने एक ओसारी थी। उसी में उसके कमरे की खिड़की भी खुलती थी जिसमें से निकल कर दीये का मद्धिम प्रकाश ओसारी में उजियारा बाँट रहा था।

सुखई चारपाई पर पड़ा हुआ गौर से रधिया की बातें सुन रहा

था। मैं भी छिपकर एक किनारे उसी ओसारी में खड़ा हो गया और लगा उन दोनों की बातें सुनने।

रधिया कह रही थी—

"महतो, महतो, इतनी जल्दी पलक ढँप गई।"

"नाहीं, नाहीं, हम सब सुनत जात हई। तू कहत भर चलऽ।"

"कोई किस्सा थोड़े सुनावत हई। अरे! वही बड़े बाबू की बात महतो। कितना नीक सुभाव हौ। मलकिन तो उनसे भी सूधी हैं।"

"रधिया, देख किताब का पन्ना बन्द करि दे तब बोल।"

"महतो! किताब से काहे के बुरा मानत हो। आपन सोची नाहीं होत। ऐहि साल अपर मिडिल कऽ इमतहान देइ देइत मगर भगवान कऽ मर्जी ही कुछ और है।"

"तोके इमतहान सूझ पड़े ज़रूर। इहाँ तो दूसर कऽ दूसर मामला बखेड़ा लगा है। पेट चलब मुश्किल है।"

"महतो! सच्चै कहऽ तोहरे हुक्का-पानी खाय-पीअई में कौनो कमी तो एही बिचन नाहीं पड़ा। जरूर एक महीना से तनखाह नाहीं मिला, नौकरी नाहीं तो कैइसे मिलै लेकिन तोहार इन्तजाम तो सब होत जात हौ न।"

"रधिया! हम अपने गोड़े से लचार होइ गये नाहीं त तोके घर-घर घूम के मजूरी करै न पड़त।"

"महतो! मेहनत मजूरी में कौन लाज शरम? चोरी चमारी खराब है, दियानत न बिगड़े, ईमानदारी पर कायम रहे, अपने सत्त पर कायम रहे, सत्त गारत रहै तो येसे बढ़ के कौन बात हौ येहि दुनिया में। हमरे सत्त के देख के बड़े बाबू के दया आयी। कितना परशान होत हैं।"

"रधिया! तू समझते नाहीं। मलकिन तोके बदे उनसे बहुत कहे होइहैं। बात असल में ई हौ।"

"महतो ! आपन-आपन समुझ हौ । लेकिन सती कऽ सत्त अकारथ नाहीं जात ।"

"तोके का सूझा रहा कि तैं मेमसाहेब से सरवर कई बैठी ।"

"वाहरे, दिनभर स्कूल में खटै पड़े । फिर रात में छै से नौ तक मेम साहिब कऽ हाजिरी काहे बजाई और मेम साहिब भी जौ गत कऽ होतिन तो कौनौ बात नाहीं रहा । महतो ! रामलाल हमरे इहाँ का कलरक हौ । वोही के संगे हम उनके देखा । हम दूनौ हाथ से आपन मुँह ढाँप लिहा । तब से हम जाब बन्द कयि दिहा । बार बार बुलावत रहिन, हम इन्कार करत चली गई । एक दिन झूठ-मूठ कऽ इलजाम लगाई के हमके मोअत्तल कई दिहिन । न हमार कौनौ जवाब सुनीन न सवाल । आठ रोज के बाद निकाल बाहर कइ दिहिन । कोई न्याव-अन्याव सुनै वाला उहाँ के बचा बा । वकील साहब उनकर जस करिहैं कि हमार । हमके कुछ नाहीं उम्मीद हौ । बड़े बाबू बेचारू के दौड़ब भर हाथ लगे ।"

"रधिया ! तैं जिद्दी हैं । मेम साहब के हाथे-गोड़े जायके गिरै चाहे । जब तैं अपने से होशियार रहबे तो तोर कोई बालौ न बाँका कई सके ।"

"महतो ! मूड़ी काट लेई कोई लेकिन अपने से ई कभौ न होये कि जाई और मेम साहब के गोड़े गिरी । तू बेकार घबड़ातहौ । उनकर पाप उनही के एक दिन खाइ जाये । सत्त गारत हई...."

"जैसे सारी दुनिया की और मेहरिया छिनार हैं और तैं ही एक अकेली सतवन्ती ।"

"महतो ! बुरा मानै कऽ कौनौ बात नाहीं है । एक बेर जहाँ गोड़ गड़हा में पड़ा कि जिनगी भर के वस्ते हाथ मलै के रहि जाये । एक किस्सा सुनाई ?"

"कहाँ कऽ बात हौ रे ।"

"नैहरे में एक हमार सखी रही। बड़ी नीक रही बेचारी। ओकर गौना नाहीं गवा रहा। १५–१६ कऽ होइ चली रही। शहर के कोई बाबू आयेन। दोनों में देखा देखी बातचीत भई। बस परदेसी ओहि बेचारी के फुसलाई के अपने संगे निकाल लेइ गवा। तीन बरस तक कुछ पता नाहीं चला। बाद में लोगन के जान में कुल मामला आइ गवा जब कलकत्ते से जमींदार कऽ बेटवा आयेन। उनही बतायेन कि ओकर देह सड़ि गवा और ओके एक पञ्जाबी के हाथ बेच दिहेन। फिर बाद में उहौ ओके निकाल बाहर किहेस। पेटवा जरै लाग तो कोठा पर जाइके बैठी। उहाँ बीमार पड़ी, सारे शरीर में बड़ा-बड़ा फोड़ा फूट निकला और अस्पताल में मुइ गयी।"

"............"

"महतो! सुन लिहऽन! सत्त खोअइ कऽ नतीजा का हो...."

"रधिया! हम का तोसे कुछ गलत काम करै वस्ते कहत हई। अच्छा देख, अब ढेबरी बुताइ दे और...."

"देखऽ महतो! तोहार लड़का के बराबर भी बुद्धि नाहीं। हमार तबीयत तीन दिन से ठीक नाहीं और तू....भला कुछ धरम-करम तो...."

"बिसर गवा रहे रधिया।"

"अइसन सुधि कौने काम कऽ। अच्छा अब सोइलऽ। का तमाखू चाहे।"

"नाही रे। जरा बाहर चलबै। अपने घरा माँ एको आँगन भी नाहीं हौ कि...."

"अच्छा...." कहकर रधिया उठी और बैसाखी देकर किवाड़ खोलने जा रही थी। बस मैं सर पर पैर रखकर वहाँ से भागा।

तब तक साढ़े दस का वक्त हो गया था। घर पहुँचा, खाया पिया और देवीजी से रोज की तरह संक्षेप में सारा दास्तान कह सुनाया। सब कुछ सुन लेने पर उन्होंने कहा—

"अभी तक एक ही समस्या थी, रधिया की रोजी। और अब दूसरी समस्या भी आ खड़ी हुई।"

"बेशक!"

"देखिए, कल तक और कोई नयी समस्या कहीं न खड़ी हो जाये।"

"यही तो जिन्दगी है।"

"जरूर! दो रोज के लिये तो आप आवें और बस दुनिया भर की समस्याओं में लिपट जायँ? बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी, माँ-बाप, भाई-बन्धु, किसी से कोई वास्ता नहीं। बच्चे सिहक कर मर जाते हैं कि भला उनसे आप प्यार भरी दो-दो बातें कर सकें लेकिन आपको कहाँ फ़ुरसत? यहाँ रहेंगे तो यह हालत और यहाँ से चले जायँगे तब तो इस घर में स्यापा ही पड़ जायगा।"

"बस तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारी आँखों के सामने सदा बैठा रहूँ। आम की तरह अचार डालकर रखे रहो मुझे। मेरा काम कमाना और तुम्हारा काम उसे खर्च करना। अब तुम्हीं गृहस्थी का जैसे संचालन कर रही हो तो इसमें मैं क्यों हस्तक्षेप करने जाऊँ? बच्चों की देख-भाल, सम्भाल, पढ़ाई-लिखाई, घर-गृहस्थी सब तुम्हारे जिम्मे है। न तो कभी तमाम पचड़ों में मैं पड़ा और न कभी मुझसे उम्मीद रखना।"

"इसके लिये थोड़े ही मैं कहती हूँ। आपके जिम्मे तो समस्याएँ ही इतनी रहती हैं कि...."

"लेकिन रधिया की तारीफ तो तुमने ही की थी उस दिन। उसकी करुण कहानी सुनाकर मेरा मन करुणार्द्र कर दिया और जब मैं उसे हल करने के पीछे पड़ा तो अब इस तरह की तानाबाजी।"

"नहीं, मैं तो कुछ नहीं कह रही हूँ। जैसे आपने इस गाँव की अन्धी आँख का इलाज कराया और गाँव के कोने-कोने में लगी बिजली की बत्तियों से मालूम होने लगता है कि इस उजाड़ खण्ड में भी कोई

बस्ती आबाद है। रधिया की रोजी अगर फिर लग गयी तो उसके भी घर का अँधेरा दूर हो जायगा।"

"आखिर मैं कुछ दूसरा काम कर रहा हूँ? क्षमा की बात नयी नहीं है लेकिन तुमने तो उसे देखा ही नहीं है। देखोगी तो सचमुच श्रद्धा से तुम्हारी गरदन झुक जायगी।

"सुना है मैंने। बहुत नेक हैं। बहुत सहती हैं। आपके बड़े भइया उन पर बहुत अत्याचार करते हैं लेकिन उफ् तक जबान पर नहीं लातीं।"

"बोलो! क्या ऐसी सती साध्वी स्त्री की कठिनाई हल नहीं करनी चाहिये?"

"जरूर, इसके लिए मेरी कोई शिकायत नहीं है।"

"तो आखिर तुम्हारी नाराजगी का यही कारण है न कि मैं दिन भर समस्याओं को सुलझाता फिर रहा हूँ। ठीक है, अब से सबेरे तक तुम्हारी खिदमत में हूँ। जो आज्ञा हो, उसका पालन करूँ।"

"औरतें आज्ञा देना नहीं जानतीं, वे आज्ञा शिरोधार्य कर उसका पालन करना जानती हैं। आप इतने बड़े विद्वान् होकर भी स्त्रियों के सम्बन्ध की इतनी मामूली-सी बात भी नहीं जानते?"

"जानता हूँ, यह भी और इससे बहुत ज्यादा भी। पुरुष जब महिलाओं की कोमलता, भाव-प्रवणता, सरलता, उदारता, सहिष्णुता को अपनाने लगता है तब वह एक मामूली इन्सान नहीं रह जाता। शिक्षा, दीक्षा, अध्ययन, साधना आदि विशेषताएँ आदमी को आदमी के झुंड में से खींचकर उसे महात्माओं की पंक्ति में ला बैठाती हैं और तब वह विनय का अवतार होकर व्यग्रतापूर्वक सभी से आज्ञा की अपेक्षा करने लग जाता है। तब वह आज्ञा देने की स्थिति में नहीं रह जाता।"

"यह बात है! तो अब आप महात्मा बनने जा रहे हैं?"

"मेरे कहने का ऐसा कोई मतलब नहीं...."

"जी नहीं, मैं आपका रवैया देख रही हूँ।" कहकर देवीजी ने मेरे चेहरे से अपनी निगाहें हटा लीं। क्षण भर में ही मुझे ऐसा कुछ आभास होने लगा जैसे वे सिसक रही हों। सचमुच, पगली रोने लगी थी। लेकिन इसका भी इलाज था अपने पास।

उसे खुश करते मुझे कितनी देर लग सकती थी। दोनों खुशी-खुशी सो रहे।

६

दूसरे दिन सुबह मैं सोच ही रहा था कि खन्ना के यहाँ चलें कि तब तक सामने उपस्थित हो गया अविनाश। बाईस साल का लम्बा-सा गोरे रङ्ग का नौजवान। बी० ए० फर्स्ट क्लास—एम० ए० का छात्र और दया सेठ का प्रेमी। इसी से दया के विवाह की बात कल क्षमा कह रही थी। वह अभिवादन कर सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया और बोला—

"दादा, शायद कहीं जानेवाले थे।"

"नहीं, कोई खास जगह नहीं, खन्नाजी के यहाँ ही...."

"रधिया के मामले के बाबत लेकिन ऊषा की बात कैसे कटेगी?"

"क्या कहा? न्याय-अन्याय कोई चीज ही नहीं है?"

"दादा, ये बातें तो समझदारों की हैं न।"

"बड़े भैया को समझदार बनाकर छोड़ूँगा। खैर, कहो और क्या हाल है?"

"सब ठीक ही है। कल दया से आपकी बातें हुयी थीं। वह कहती थी कि छोटे जीजा चाहें तो बड़े जीजा रास्ते पर आ जायँ।"

"कल से ही मैं इस फेर में पड़ गया हूँ अविनाश। देखो, क्या होता है लेकिन क्षमा भाभी तो बहुत ही नेक हैं।"

"साक्षात् देवी हैं दादाजी। लेकिन साहब की बात ही न्यारी है। ऊषा को लेकर ही खटपट है। अभी तक कोई जानता नहीं लेकिन कालिज की भी प्रतिष्ठा पर किसी दिन खतरा उपस्थित हो सकता है। कोई भला आदमी अपनी बेटी क्यों ऐसी संस्था में भेजना चाहेगा?"

"समझता हूँ अविनाश! ऊषा और खन्ना की गहरी दोस्ती कई घर बरबाद कर रही है। क्षमा का घर इसीलिए बिगड़ गया है।"

"दादा! इतना ही नहीं। एक घर और चौपट हो गया है। रामलाल क्लर्क का। उसे तो आपने देखा है न?"

"हाँ, हाँ!"

"बेचारे की बुरी हालत है। मेरा विश्वास करता है। इसलिए राई-रत्ती मुझसे नहीं छिपाता। दिन भर खटकर स्कूल से घर जाता है। कुल साठ रुपये उसे मिलते हैं। उसके आश्रित हैं कुल दस प्राणी। शाम को सात से दस ग्यारह तक कालेज की प्रिन्सिपल ऊषा शर्मा के घर जाने कौन-सा रजिस्टर खोलकर खाना पूरी करता है। रात को घर लौटता है तो रोज बीबी से झगड़ा होता है। आप बुजुर्ग हैं। शर्म की बात है। क्या बताऊँ?"

"सब कुछ मुझे मालूम है।

"यह देखिये, रामलाल की फोटो। ग्रैजुयेट है। तेइस-चौबीस साल का। युनिवर्सिटी में सबसे सुन्दर स्वास्थ्य के लिये इसे पुरस्कार मिल चुका है लेकिन इस वक्त उसके बदन पर उभड़ी हुयी नीली नसें आप गिन डालिए, उसकी आँखें धँस गयी हैं।"

"यह सब शर्मा जी की मेहरबानी है। खैर...."

"इतना ही नहीं वकील साहब ने बना बनाया घर तो बिगाड़ा ही इससे भी ज्यादा कुछ और किया है। किसी का घर बसने जा रहा था उसे भी बसने नहीं दिया।"

"यानी तुम्हारी-दया की शादी में भी क्या इन्होंने ही रेंड़ मारी?"

"इस संहार में इन्हीं का 'अपर हैन्ड' रहा है। माँ लक्ष्मी को ऐसा बरगला दिया है कि उन्हें मेरी शकल से सख्त नफरत ही गयी है। पता नहीं क्या-क्या झूठ सच कह डाला है।"

"खन्ना तो बड़े वाहियात आदमी निकले। अच्छा, इन्हें बदलने का इरादा करके निकला हूँ लेकिन भई तुम नौजवान ठहरे, मेरी कुछ मदद करो।"

"आपकी जो आज्ञा हो।"

"रामलाल को रँगे हाथों पकड़ना चाहता हूँ ताकि खन्ना को विश्वास हो जाय।"

"देखिए मैं उसकी गतिविधि पर निगाह रखूँगा लेकिन आज मैं आपके सामने जिस काम से उपस्थित हुआ हूँ उसके सम्बन्ध में तो कुछ बातें ही नहीं हो सकीं।"

"हाँ हाँ, सुना जाओ। क्या बात है?"

"हम लोग बहुत आगे बढ़ चुके हैं। इतना आगे बढ़ चुके हैं कि पीछे कदम उठाना मौत है।"

"दया और तुम?"

"जी।"

"मुझसे क्या चाहते हो?"

"परामर्श। क्या करूँ? सलाह दीजिए, बल दीजिए, साहस दीजिए, सहयोग दीजिए।"

"अच्छी बात है। तुम लोगों की भी एक समस्या सही। जैसे छप्पन तैसे गप्पन। हाँ, तो माँ लक्ष्मी तुम्हारा विरोध करती हैं।"

"जी, उनका कहना है कि मैं उनके मुकाबिले में जाति-बिरादरी के ख्याल से हीन हूँ और चन्द मिनट के लिए मान लीजिये, यह सही भी हो तो क्या हम लोगों का पवित्र प्रेम कोई महत्व ही नहीं रखता ?"

"खन्नाजी ने उसे बहकाया होगा और अब उस बूढ़ी ने जिद पकड़ ली होगी।"

"जी, बस यही बात है।"

"अब केस खन्नाजी के भी मान का नहीं रहा।"

"करीब-करीब यही....।"

"लेकिन क्षमा भाभी।"

"वह तो बराबर माँ को समझाती रहती हैं लेकिन हिन्दुओं के बूढ़ छठिया जाते हैं न। वह किसी की बात अपने आगे कहाँ मानने वाली ?"

"देखो अविनाश, जोश में आकर विवाह शादी के मामले पर गौर नहीं करना चाहिये। यह संजीदा सवाल है। इसे संजीदगी से ही हल करना पड़ता है। तुम दोनों एक दूसरे को बहुत प्यार करते हो। अच्छा, अभी यह 'रोमैन्टिक फ्लाइट' केवल भावना जगत तक ही सीमित है अथवा इसके आगे भी....? शरम लिहाज छोड़कर बातें करना होगा। मैं स्वयं बहुत पहले से तुम दोनों की शादी का पक्का समर्थक हूँ।"

"जी आपकी कृपा है, आप दया से भी बातें कर लें।"

"हाँ तो तुमने बताया नहीं मेरे पिछले सवाल के बाबत।"

"कुछ नहीं, केवल भावना जगत तक ही। और कोई 'सीरियस' बात नहीं।"

"अच्छा, कब से यह सिलसिला चला आ रहा है ?"

"आपसे छिपाना व्यर्थ है।"

"डाक्टर से कहीं रोग छिपाया जाता है।"

"वही तो मैंने भी सोचा। अब मैं पूरी कथा ही सुना दूँ—असल में हम लोगों का सम्बन्ध पिछले चार साल से चल रहा है। मैं प्रयाग में पढ़ ही रहा था और वहीं अब भी हूँ। दया भी वहीं पढ़ने गयी। एक ही शहर के दोनों रहने वाले ठहरे। एक दूसरे को पहचानते भी थे। फिर मेरा मकान उसके घर से कोई दो फर्लाङ्ग पर ही तो है। वैसे हम दोनों के घरों से पूर्व का कोई रीत परस्पर न तो तब ही था और न अब ही है।

"एक बार साथ ही साथ हम दोनों प्रयाग से घर आये और दो घण्टे तक आपस में बातें होती रहीं। हम दोनों सेकेण्ड क्लास में थे। उसका नौकर सर्वेण्ट में बैठा था। पैसेञ्जर ट्रेन थी। आगे चलकर इस डिब्बे के शेष दो मुसाफिर भी उतर गये। फिर तो अन्त तक एकान्त ही रहा लेकिन छोटे स्टेशनों पर उतर कर उसका नौकर उसकी खबर लेता रहता था। काफी घुल-मिलकर बातें हुयीं। हम दोनों की आँखें एक दूसरे के दिल में झाँक कर कुछ टटोलने-सी लगीं। मैं सामने वाले बर्थ पर था लेकिन उसके आग्रह से उसके समीप ही आकर बैठ गया। इसी समय सिटकनी उठाते-गिराते मेरी उँगलियों में चोट आ गयीं। खून निकलने लगा। उसने चट अपनी साड़ी का किनारा फाड़ा और मेरी ड्रेसिङ्ग कर डाली। इतनी छोटी सी बात थी। अपना स्टेशन आया। दोनों उतरे और अपने-अपने घर चले गये। और उसके बाद तो सैकड़ों बार मिले, पास-पास बैठे रहे, लेटे रहे, घण्टों अकेले में बातें करते रहे। हम दोनों ने एक दूसरे को खूब नजदीक से समझा लेकिन समाज को समझने नहीं दिया कि ऐसा कोई सम्बन्ध है हम दोनों में। यह तो इधर कोई पाँच छै महीने से हम दोनों के विवाह की चर्चा शुरू हुयी थी। और दया से खन्ना जी चिढ़े ही थे।"

"उससे भला वह क्यों नाराज होने गये?"

"उनकी वासना की गोद में खिलौना बनकर खेलना दया ने कबूल नहीं किया ?"

"कैसा आदमी है !"

"बड़े भइया हैं न ।"

"खैर वह तो हैं ही । तो, इसीलिये अब यह दाँव खेला ।"

"जी !"

"घबड़ाओ नहीं । लेकिन प्रेम और वासना दोनों के भेद समझने की कोशिश करो ।"

"खैर, इतना तो समझता ही हूँ ।"

"नौजवान ! वसूलों को समझना एक बात है और अपने आचरण द्वारा उस पर अमल करना दूसरी बात । वासना का जन्म हाड़-माँस की गोद में होता है और प्रेम का जन्म पवित्र भावनाओं के पाद-पीठ पर । इसलिये वासना और प्रेम के स्वरूपों से पहले परिचित हो जाओ ।" रधिया को घर में जाते देखकर मैं चुप हो गया और जब वह घर में चली गयी तब पुनः बोला—

"अच्छा तुम घबराओ नहीं । मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ सदैव है और रहेगी ।"

"आपके आशीश का मुझे बहुत आसरा है । अच्छा, अब मैं आपकी आज्ञा पालनार्थ जाता हूँ । सारी बातों का पता लगाकर खबर दूँगा ।"

"जरूर ! इसमें फरक न पड़े ।"

"ऐसा कदापि न होगा । अच्छा आज्ञा है," कहता, अभिवादन करता अविनाश चला गया और मैं भी अपनी देवी जी से सुसमाचार सुनाने भीतर जा पहुँचा ।

रधिया आँटा लेकर अपने घर तब तक चली गयी थी । मैंने देवी जी से कहा—

"सुना नहीं देवी जी।"

"कोई नयी बात?"

"एक समस्या और उठ खड़ी हुयी!"

"वह क्या?"

"दया सेठ और अविनाश की शादी।"

"इसको भी लगे हाथ निबटाते जाइये।" कहकर व्यङ्ग मिश्रित मुस्कान की क्षीण-सी रेखा उनके अधरों पर दौड़ गयी। मैं भी हँस पड़ा। बोला—

"क्या मुसीबत है! अभी तक दो उजड़े हुये घरों को फिर से बसाने की योजना बन रही थी और अब एक यह भी तमाशा खड़ा हो गया। सुनकर तुम्हें ताज्जुब होगा कि इस समस्या की भी जड़ में मेरे बड़े भैया ही मौजूद हैं।"

"आपके बड़े भैया महान हैं। सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान।"

"अच्छा, मैं जरा क्षमा के यहाँ जा रहा हूँ। बारह-एक तक आ जाऊँगा।" कहकर मैं खन्ना के घर की ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँचा तो वकील साहब कचहरी जा चुके थे। दया भी अपने घर जा चुकी थी। उसका भी घर वहाँ से कोई चार पाँच फर्लाङ्ग पर था। फुलवा नौकर और क्षमा के अतिरिक्त वहाँ खन्ना का एकमात्र पुत्र गोपू—पाँच वर्षीय मौजूद मिला। उसके पैर में कुछ तकलीफ थी। इसलिये वह उस दिन स्कूल नहीं गया था। भीतर गया, बैठा और भाभी से बातें शुरू हो गयीं। मैंने कहा—

"भाभी बहुत सिधाई भी बुरी चीज होती है। अत्याचार करने से बढ़कर अत्याचार सहने का पाप होता है।"

"भइया, क्या मैं नहीं समझती लेकिन भले घर की बहू-बेटी का यह तो फर्ज नहीं होता कि अपने पति से झगड़ा करे। रधिया की बेरोजगारी के मुख्य कारण हैं तुम्हारे बड़े भइया। दया-अविनाश के

रास्ते के भी यही कटंक हैं। मेरे तो सर्वस्व हैं। मुझे अपने लिये उनके खिलाफ कोई शिकायत नहीं करनी है। मेरा तो निर्माण ही इसीलिये हुआ है कि वह मुझे व्यथा पहुँचाते रहें और उसी वेदना में मैं असीम सुख की अनुभूति प्राप्त करती रहूँ।"

"भाभी, जब इतना ऊँचा ख्याल है तुम्हारा तब तो कुछ कहना ही नहीं लेकिन दया तुम्हारी प्यारी बहिन है, रधिया एक सती नारी है, गरीब की पत्नी। इन दोनों की मदद करना तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है।"

"वह सब तो जहाँ तक बन पड़ता है करती ही हूँ लेकिन उन मामलों को लेकर मैं क्या उनसे उलझूँ। मेरा सुनते होते तो बात दूसरी थी। फिर वह अच्छे बुरे जो भी हों, मेरे लिये तो वही सब कुछ हैं। दुःख है कि मैं दया जैसी अपनी छोटी बहिन के लिये भी कुछ नहीं कर पा रही हूँ, भगवान की मर्जी है। देखो, कब सुनता है परमेश्वर।" कहते-कहते उनकी आँखें भर आयीं और आँचल के छोर से वह आँसू पोंछने लगीं।

"भाभी तुम्हारी यह आदत बहुत खराब है। जब सहिष्णु बनी हो तो छाती पर सिल रखने का अभ्यास करो।"

"और मैं कर क्या रही हूँ? लेकिन पत्थर का भी दिल पसीजता है। उसके भी दिल में दर्द होता है।"

"सो तो ठीक कहा लेकिन अपनी माँ को आप क्यों नहीं समझातीं कि वह बड़े भइया के फेर में न पड़ें।"

"माँ से कभी मैंने उनकी शिकायत नहीं की। मुझ पर जो भी बीती, वह मैं ही केवल जानती हूँ या वही जानते होंगे। तीसरा भगवान छोड़कर और कोई नहीं जो मेरी मुसीबतों का कच्चा चिट्ठा जानता हो। सोच लो, आज तक किसी से मैंने जबान नहीं खोली इस सम्बन्ध में।"

"लेकिन क्या इसे अच्छा समझती हो कि वह दया पर बुरी निगाहें डालें ?"

"कभी नहीं, दिल काँपता रहता है जब तक वह इस घर में रहती है। इसीलिये उसका यहाँ आना-जाना मैंने खुद उसे समझाकर कम करा दिया है। खैर, वह दया की धूल भी नहीं पा सकते। वह कोई और ही चीज है। उसके पास आचरण की पवित्रता का महान भूषण है जो उसकी बाह्य सुन्दरता से कोटि गुना कीमती है।"

"फिर क्यों नहीं, माँ से कहतीं ?"

"उनकी शिकायत करूँ। छिः छिः, दया अपना मामला अपने आप हल कर लेगी।"

"अच्छी बात है। तो मैं चला। शाम को फिर...." कहता हुआ मैं उठा और घर की ओर लौट पड़ा।

७

सुबह-शाम, दिन-रात एक ही मामले को लेकर मैं जो पिल पड़ा था कि न दिन का दिन समझ पड़ता था और न रात का रात। अभी इधर दो दिनों के बीच खन्ना जी से भेंट ही नहीं हुयी। आज तो उनसे भेंट करके ही दम लूँगा। इसलिये पक्का इरादा करके उनके यहाँ तीन ही बजे जाकर बैठ गया। और भाभी से इधर-उधर की बात कर ही रहा था कि देखता हूँ तो मेरे सामने मौजूद हैं दया सेठ। "वाह री लड़की!" मन ही मन मैंने कहा। फिर बोला—

"क्यों अभी घर से ही आ रही है ?"

"जी हाँ, ए० के० से आपकी मुलाकात हुयी थी न।"

"क्यों? मिला तो था।"

"बस, यों ही, कोई बात नहीं।"

मेरे समझ में बात कुछ-कुछ आने लग गयी थी। मैंने कहा—

"भाभी! कुछ चाय नाश्ता रहे न।"

"अभी-अभी"

भाभी को टरका दिया वहाँ से और अब दया से बातें होने लगीं। मैंने कहा—

"ए० के० से मेरी हुयी बातें तुझे सब मालूम हैं?"

"जी हाँ, एक-एक अक्षर...."

"तो अब क्या करना है?"

"यह आप मुझसे पूछते हैं? ताज्जुब की बात है। हम लोग कोई ठोस कदम उठा नहीं रहे हैं। इसीलिये आपकी परामर्श की याचना करते हैं वर्ना हमें अपने तईं इस समस्या को हल करना होता तो कभी वारा-न्यारा हो गया होता।"

"देख दया! समाज और जीवन से खेल नहीं किया जाता।"

"लेकिन जो समाज अपना दुख-दर्द न समझे, उससे हमारा वास्ता ही क्या छोटे जीजा?"

मैं चुप हो गया किन्तु उसकी बात की चोट से नहीं। यह सब तो जज़्बात हैं नौजवानी के। वह जो बीच-बीच में मुझे छोटे जीजा जी कह दिया करती थी उसी बात को सोचकर मुझे भीतर ही भीतर हँसी-सी आ जाती थी। क्षणभर मौन रहकर मैंने कहा—

"देख! जीजा लोगों के चक्कर में न पड़ा कर। यह सौदा जानती नहीं कि कितना महँगा पड़ता है।"

वह मुस्कुराने लगी। बोली—

"क्या बताऊँ? देखिये तो जरा इनकी इन्सानियत। मैं तो इन्हें

अपने बाप के बराबर समझकर अपना भोलापन इन पर निसार किये रहती थी और ये कुछ का कुछ मतलब लगाने चले थे। मेरा तो मुँह सूखता था बड़े जीजा, बड़े जीजा कहते-कहते लेकिन इनकी नीयत बर्गस्त हो गयी। मैं आपको छोटे जीजा जी कहकर आपकी गोद में अपना मुँह छिपा लूँ तो क्या आप भी मुझे कुछ का कुछ समझने लगेंगे ?"

"दया, मुझे बख्से रहना। मैं बहुत सीधा-सादा आदमी हूँ।"

"वाह! आप छोटे जीजा जी, कलाकार हैं। आपकी बात और है। प्रेम भी पहचानते हैं और वासना भी।"

"लेकिन तू ?"

"मैं भी! मुझे ए० के० से प्रेम है। हम दोनों एक दूसरे से वादा कर चुके हैं इसे निभाने का मरते-मरते तक। और जरूर ही निभायेंगे। विवाह का सम्बन्ध ऐसा होता है कि दोनों को सामाजिक जीवन में एक दूसरे के बिलकुल करीब-करीब रहने का मौका मिल जाता है। इसीलिये हम दोनों इस सम्बन्ध-सूत्र में बँध जाना चाहते हैं मगर मेरी बूढ़ी माँ और अधेड़ उमर वाले जीजा ये दो गाड़ी के आगे काठ बनकर खड़े हो गये हैं।"

"लेकिन प्रेमियों की परीक्षा लेने को ही मुसीबतें आती हैं और रुकावटों का जन्म होता है ?"

"हम लोग परीक्षा देने को तैयार हैं। और सबसे अव्वल निकलेंगे।"

"ईश्वर करे, ऐसा ही हो। अच्छा मैं सोचकर कोई रास्ता बताऊँगा।"

"आपका आशीश तो सुलभ है न ?"

"निसन्देह।"

तब तक आ गयीं क्षमा देवी और हम दोनों की बातें अधूरी

ही रह गयीं। चाय-पानी खतम होते-होते तक चार बज गये और तब तक कचहरी से वापिस आ गये मेरे बड़े भैया।

आधे घन्टे में अन्य कामों से खाली पाकर मेरे बड़े भइया आये और अपने विशेष कमरे में मुझे लिवा गये। वहीं मेरी उनसे बातें होने लगीं। वे ही बोले—

"देखो भाई! काम तो नहीं हो सका।"

"क्यों क्या बात हुयी?"

"ऊषा शर्मा का कहना है कि रधिया की जगह तोड़ दी गयी है और अभी तक जितनी दाईयाँ हैं उन्हीं से काम पूरा होता जा रहा है।"

"फिर उसे डिसमिस क्यों किया गया?

"बात तो एक ही हुई करीब-करीब।"

"खूब कहा आपने। इलजाम लगाकर नौकरी से अलग कर देना एक बात और जगह न हो इसके कारण नौकरी से पृथक करना दूसरी।"

"टेकनिकली तो तुम्हारा कहना ठीक है लेकिन सोचो कि कालिज का सबसे बड़ा अधिकारी—जिसकी मातहती में मुलाज़िम को काम करना है—वही जब अपने कर्मचारी से खुश नहीं है तो न्याय एवं अधिकार की दुहाई देकर भी वह कर्मचारी कितने दिनों तक नौकरी कर सकेगा।"

"न्याय और अधिकार फिर कोई चीज ही नहीं? मनमानी घरजानी। कोई भी कायदा कानून नहीं। जानते हैं न कि समाज जब कायदा कानून के बन्धनों को तोड़ फेंकता है तो लोग कहने लगते हैं कि विप्लव बेला आ पहुँची। तब क्रान्ति मच जाती है। कायदा, कानून, न्याय, अधिकार....आखिर इन्हीं की हिफाजत के लिए आप सुबह से शाम तक अदालत के एक कमरे से दूसरे कमरे तक चक्कर लगाते रहते हैं।"

"तुम्हारा कहना सब कुछ सही है लेकिन व्यवहारिक जीवन की मोटी-सी बात बता दी मैंने।"

"ठीक है। लेकिन वह पाँच साल से कालिज में नौकरी करती चली ही आ रही थी। उसके बाद की नियुक्त किसी दाई को पहले निकालना चाहिये था न ?"

"फिर कानूनी बातों में पड़ने लगे। बस यह समझो कि ऊषा को रधिया से काम लेना है और वह उन्हें पसन्द नहीं।"

"कैसे पसन्द होती ? मैं ऊषा की रग-रग से वाकिफ हूँ। मुझसे कोई बात छिपी नहीं है। बस यही है कि लड़कियों की पढ़ाई और उनके कालिज का मामला है वर्ना मैं जो आग लगा देता कि कितनों के होश ठंढे हो जाते।"

"तुम तो मुझ पर नाहक नाराज हो रहे हो। कहो तो मैं कालेज की मैनेजरी से ही इस्तीफा दे दूँ।"

मैं थोड़ा ताव में आ गया था। अपने पर कन्ट्रोल कायम किया और धीरे से बोला—

"बड़े भइया! यह कोई हमारा आपका निजी मामला थोड़े ही है। रही ऊषा की बात। ठीक ही है, वह नहीं मानतीं तो मैं क्या करूँ या आप ही क्या कर सकते हैं ?"

"देखो, भाई एक बात और है। एक दाई के मुकाबिले में कालिज के प्रिन्सिपल को तौहीन करना ठीक नहीं।"

"अच्छा, अब मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है। फिर शर्मा से अपनी कोई दुश्मनी थोड़े ही है।"

"दोस्त! तुम्हें न मालूम होगा। वह एक बहुत बड़े आदमी की बीवी है। अपने पति से झड़प हुयी, नौकरी कर लिया। आनन्द से जीवन व्यतीत कर रही है और वह बराबर उसको मनाने के लिए

पीछे पड़े रहते हैं लेकिन वह जरा और ही क़िस्म की औरत है। किसी रोज तुम्हारी उससे मुलाकात करा दूँगा।"

"उनसे मिलकर मुझे खुशी ही होगी।"

"बहुत ही अच्छा स्वभाव है। बहुत ही मिलनसार है। उसकी जबान से जैसे कोई शहद का सोता फूटा हो। खुश हो जाओगे। फिर तुम्हें तो जीवन में अपने अनुभव की वृद्धि के लिए चरित्रों का अध्ययन करना ही चाहिये।"

"जरूर। समझता हूँ। मुझे यों ही टाल देना चाहते हो, बस पीठ ठोंक कर। देखो, क्षमा भाभी में तो मैं साझीदार नहीं बना लेकिन अगर इसमें मुझे शामिल नहीं किया तो बुरा होगा बड़े भाई।"

खन्नाजी खिलखिला कर हँस पड़े। बोले—

"मैं कहाँ इन्कार करता हूँ। तुम्हीं जरा इधर-उधर करोगे लेकिन कुछ पीना-खाना भी पड़ेगा।"

"इसमें क्या है। यारबाशी के ये ही मजे हैं।"

"तो यह बात है। लेकिन अपने को तो बस इतने से काम।"

"क्या-क्या?"

"घर पर तो वैष्णवी बनी हैं तुम्हारी क्षमा। इनकी सादगी देख कर सिवाय दिल बैठ जाने को और क्या होगा। हाव भाव, बनाव सिंगार, चटक मटक, बातचीत, सब कुछ चाहिये न।"

"लेकिन क्षमा भाभी खूब अच्छा गा भी लेती हैं, सीने-पिरोने के कामों की बानगी मैं देख चुका ही हूँ। फिर गृहस्थी की सुव्यवस्था का नायाब नमूना मैं देख ही रहा हूँ। अब क्या चाहिये?"

"वह सब ठीक है लेकिन रुचि-परिवर्तन ही के ख्याल से अगर कहीं जाकर थोड़ा तफरीह कर आता हूँ तो क्या बुरा?"

"सो तो ठीक है लेकिन आप जिम्मेदार आदमी हैं।"

"वाह! क्या कभी पीके नाली में पड़ा रहता हूँ? एक जगह है

ऊषा की सो कब मैं जाता हूँ और कब आता हूँ यह शायद ही किसी ने देखा हो आज तक। और तुम्हें भी कोई नहीं देखेगा। ले चलूँगा।"

"मैं जरूर चलूँगा।"

"तो आज ही रहे न?"

"क्या हर्ज है लेकिन भाई मैं शाकाहारी हूँ।"

"वाह अभी तो कह रहे थे कि...."

"हाँ, हाँ खाने-पीने के मामले में थोड़े ही कहता था।"

"फिर क्या बात है? शाकाहारी कैसे? क्या आपका भी वही हाल है जैसा मेरा।"

"तुम्हारा क्या हाल है?"

"पहले आप अपना बताइये।"

"नहीं, पहले तुम बताओ।"

"आप जानते हैं मैं जिद्दी हूँ।"

"तब तो मुझे ही बताना पड़ेगा। तुम्हारी भाभी सोचती होंगी सौ किस्म की बातें किन्तु मैं बच्चे की कसम खाकर कहता हूँ जो मैंने कभी ऊषा शर्मा के बदन पर भूले भी हाथ लगाया हो।"

"आप क्या कहते हैं?"

"बिलकुल सच कह रहा हूँ।"

"आश्चर्य की बात है!"

"विश्वास करो।"

"यही कि इस समय रात है, हम लोग किश्ती पर बैठकर हवाखोरी कर रहे हैं। कमरे में नहीं हैं। क्यों?"

"तुम्हें कैसे यकीन दिलाऊँ?"

"ठीक है, मान लिया मैंने आपकी बात। तब क्या है, फिर तो कोई झगड़ा ही नहीं रहा। हम दोनों शाकाहारी ही निकले।"

"अच्छा, यहाँ से करीब नौ बजे रात चलेंगे हम लोग।"

"ठीक है, जरा घर जाकर कह आऊँ।"

"हाँ, हाँ, लौटते-लौटते बारह एक बज ही जायगा।"

"जी!" कहता हुआ मैं उठा और घर की ओर लौट पड़ा।

जनाब की यह कैफियत है! अभी उसने हाथ नहीं रखने दिया है। अच्छा ही है, न होगा तो उसी को मिला-जुलाकर रधिया का काम बना लेंगे। सम्पर्क में आने से शायद ऊषा कुछ नरम पड़ जाय। फिर कालिज के समय तक रधिया से काम लें। अपने घर न बुलावें तो हर्ज ही क्या है। उसको समझा लूँगा। जरा खन्ना की वजह से मेरा भी सङ्कोच ऊषा पर पड़ेगा। इसलिए उसका तो काम बन ही जायगा लेकिन....क्षमा का क्या होगा? दया का क्या होगा? अविनाश का क्या होगा? कन्या विद्यालय जैसी पवित्र संस्था ऐसी कुलटा कलङ्किनी के अधीन रहकर क्या रसातल में नहीं चली जायगी? मेरा दोस्त माधव क्या कौड़ी का तीन नहीं हो जायगा? क्या एक दिन रधिया जैसी जीवटवाली स्त्री भी पतन के गर्त में ऐसे वातावरण के कारण नहीं जा गिरेगी?....

रधिया की रोजी का सवाल है। मैं खुद व्यवस्था कर सकता हूँ। फिर वह स्वयं स्वावलम्बिनी है। आखिर खुद ही कमा-खा रही है न। कभी-कदा मेरे यहाँ से कुछ मिला तो मिला नहीं तो चार घर का चौका बासन उसने पकड़ ही लिया है। उसकी गुजर हो जायगी। मगर उसकी पढ़ाई का क्या होगा? उसके अरमान अधूरे रह जायँगे। उसकी कल्पना है दाई से हेड मिस्ट्रेस बनने की और वह अधूरी ही रह जायगी क्या?

नहीं, बिलकुल नहीं। मैं नहीं जाऊँगा उस पतिता के यहाँ। रात भर सोचकर कल कोई नया कदम उठाऊँगा। माधव को ही राह

रास्ते पर लाना है....सोचता-सोचता मैं घर पहुँचा और आवश्यक कार्यों में लग गया।

८

विचारमग्न बैठा हुआ समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर गौर कर ही रहा था कि उसी वक्त आ पहुँचा अविनाश और बोला—

"आप अभी आधा घन्टे पहले तो खन्ना जी के यहाँ थे?"

"था तो वहीं। क्यों?"

"बहुत देर तक आपकी प्रतीक्षा करता रहा लेकिन देर होगी यह समझकर मैं पुनः राम लाल के यहाँ चला गया।"

"क्या कोई नई बात मालूम हुयी!"

"कुछ न पूछिये, दादा। कहते शर्म और सुनते शर्म...."

"लेकिन करते नहीं।"

"सही कहा आपने। कल की बात है। रात के दस बजे के करीब रामलाल की पत्नी अपने गोद वाले बच्चे को लेकर जा धमकी प्रिन्सिपल शर्मा के यहाँ। वहाँ उसने देखा, रामलाल नशे में धुत्त है साथ-साथ मिसेज़ शर्मा भी। और दोनों अमर्यादित ढङ्ग से एक दूसरे से लगकर बैठे हैं। श्यामा ज़रा तीखी और खरे मिजाज की है। उसने रामलाल को घसीट कर बाहर मकान के खींच लेना चाहा किन्तु दोनों ने मिलकर उसे बुरी तरह मारा। इसीमें उसे चोट आ गयी। उसके सिर से खून बहने लगा। खैर तब दोनों की बदहोशी हिरन हुयी। रामलाल ने श्यामा की मरहम पट्टी की और उसको ग्यारह बजे रात

लेकर अपने घर वापिस लौटा। रातभर घर में उसके वह घमासान मचा रहा कि आसपास के लोगों का सोना मोहाल हो गया। सुबह तो वह अपने बच्चों को लेकर अपने मायके ही चली गयी। उसका मायका यहीं एक मील पर है। रामलाल ने मुझसे सारा किस्सा बताया और मुझे उसके मायके भी भेजा। खैर तब तक उसका भी पारा उतर गया था और मेरा ज़रा वह लिहाज भी करती है। इसलिये उसने कहा कि दो चार रोज के बाद चली आऊँगी।"

"तो यहाँ तक मामला बढ़ गया है।"

"जीहाँ।"

"बड़ा बुरा हो रहा है। स्थिति पर काबू न पायी गयी तो शहर की एक इतनी अच्छी संस्था डूब जायगी। ठीक है। मुझे रामलाल की बूढ़ी दादी से मिला दो और श्यामा...."

"वह सामने तो आपके आयेगी नहीं लेकिन...."

"खैर जाने दो, बूढ़ी माँ से ही सही....चलो अभी....लेकिन खन्ना जी को एक सन्देशा तो कहला दूँ। अभी अन्दर से आता हूँ।" कहकर मैं भीतर गया और काम खतम करके अविनाश के साथ चल पड़ा।

रामलाल की माँ अन्धी थी। मैं जरा बगल में बैठ गया और लगा अविनाश और बूढ़ी की बातें सुनने।

अविनाश बोला—

"मैं हूँ अविनाश, माँ।"

"अच्छा-अच्छा बेटा अविनाश....वह तो नहीं है। वहीं अपनी माई-मौसी के यहाँ गया होगा। चुड़ैल कहीं की....मेरा घर बिगाड़कर छोड़ा....अच्छा, बहू के घर तो तुम गये थे न।"

"जी, श्यामा ने कहा है कि दो तीन दिन में आ जाऊँगा। माँ को बहुत तकलीफ होती होगी।"

"रामलाल बहुत बड़ा नालायक निकला। मेरी बुढ़ौती बरबाद हो गयी। श्यामा बेचारी लक्ष्मी है। मेरे अन्धे की लकड़ी है। युग-युग जिये वह और उसके बाल-बच्चे....यह जानती होती तो सौरी में ही इसकी गरदन दबाकर मार डालती। देखो, कल उस रायड ने और उसने दोनों ने मिलकर उस गृह-लक्ष्मी को बुरी तरह पीटा। सिर फट गया। क्या बताऊँ बेटा, मैं तो आँख से लाचार हूँ नहीं तो उस चुड़ैल का मुँह मैं जाकर खुद फूँक आती।"

"अच्छा माँ—जाने दो, गुस्सा करने से क्या होगा। किसी भी तरह रामलाल को सुधारा ही जायगा। अच्छा मैं कल फिर आऊँगा कोई काम तो नहीं है।"

"नहीं बेटा।"

जब वह उठने लगा तो अन्धी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुये कहा—

"अच्छा बेटा, जाओ लेकिन इस अन्धी का ख्याल रखना।"

"जरूर माँ।" कहकर अविनाश वहाँ से उठा।

हम दोनों चल पड़े। रास्ते में मैंने कहा—

"अच्छा, अविनाश अब तुम जाओ अपने घर और मैं चलूँ अपने घर। कल इसके सम्बन्ध में कुछ करूँगा। श्यामा के यहाँ जाना व्यर्थ है।"

"जी अच्छा! लेकिन जरा मेरा भी ख्याल रखियेगा।"

"वाह! कैसी बात कहते हो।"

"अच्छा, नमस्ते।" कहकर अविनाश ने अपने घर की राह ली और मैंने अपने घर की ओर कदम बढ़ाया।

मन अत्यन्त दुखित था। चुपचाप जाकर पड़ रहा। सिर्फ दूध ही पीकर सो रहा लेकिन नींद कहाँ। देवी जी मेरी बेचैनी भाँप गयीं

और अपने मृदुल व्यवहार के मरहम का लेपन करने के आशय से आकर मेरे पैताने बैठ गयीं और बोलीं—

"करव टक्यों बदल रहे हैं ?"

"कुछ नहीं। यों हीं।"

"घोड़ा बेचकर सोने वाले भला आप वेमतलब कैसे करवट बदलने लगे। जरूर कोई गम्भीर बात है।"

"कुछ नहीं। जाओ सो रहो।"

"मैं चुपचाप बैठी हूँ। आपको नींद आ नहीं रही है और इसके पीछे कोई संगीन बात जरूर है। क्या कोई और गम्भीर समस्या पैदा हो गयी ?"

"कुछ नहीं।"

"मैं मान नहीं सकती। आपको बताना ही होगा।"

"और न बताऊँ तो ?"

"तब तो आप जरूर ही बता देंगे क्योंकि बात को बताना चाहिये या नहीं, न बताने का क्या परिणाम होगा, इन बातों पर जो आपका ध्यान ही गया, इसी से आपका इरादा बदला हुआ जान पड़ने लगा है।"

"सचमुच बड़ी विचित्र हो।"

"जो भी कहें आप लेकिन बता दें।"

"बड़ी जिद्दी हो।"

"आपसे कम।"

"क्या बताऊँ ? एक और नई नमस्या उठ खड़ी हुयी है।"

"क्या हर्ज है ? डटकर उसका भी सामना कीजिये।"

इतना सुनना था कि मैं उठकर बैठ गया। तब उन्होंने कहा—

"आराम से लेटे-लेटे मुझे बताते चलिये।"

"मजा नहीं आवेगा।"

"तब तो दूसरी बात है।"

"हाँ, थोड़े में पहले बता दूँ कि अब रधिया को नौकरी नहीं मिलेगी। ऊषा शर्मा राजी नहीं हुयीं। आज रात को मैं खन्ना के साथ उनके यहाँ जाने वाला था लेकिन एक दूसरा ही काण्ड हो गया। इसलिये न जा सका।"

"वह क्या?"

"रामलाल की पत्नी श्यामा अपनी पति की खोज में ऊषा के यहाँ कल रात में जा पहुँची। वहीं दोनों ने उसे खूब पीटा। श्यामा आज सुबह बच्चों को लेकर अपने नैहर चली गयी। खैर, अब समस्या यह है कि यह कालिज क्या रसातल में नहीं चला जायगा?"

"इसमें भी अब किसी किस्म का शक रह गया है आपको?"

"तब कालिज की प्रतिष्ठा कैसे बचे?"

"यह सवाल तो एक दो का नहीं समाज का है।"

"लेकिन समाज के हाथों समस्या को सौंपना कालेज की प्रतिष्ठा को खतरे में डाल देना होगा।"

"क्यों नहीं ये दोनों ही कालिज से निकाल दिये जाते?"

"लेकिन खन्ना जी भला क्यों ऐसा करना चाहेंगे?"

"तो उन्हें ही राह रास्ते पर लाइये।"

"एक मामूली सी दाई का काम जब उनसे मैं नहीं निकाल सका तो यह सब तो बड़ी-बड़ी बातें हैं।"

"ठीक है, लेकिन यह मामला रधिया से भी गम्भीर है।"

"है तो ज़रूर।"

"इसे हल कीजिये। देखिये, पहले तो किसी काम में हाथ डालना नहीं और जो हाथ डाल दे तो पैर पीछे नहीं हटाना चाहिये।"

"बात तो सही कहा। अच्छा, कल खन्ना जी से बातें करूँगा। देखें, बातें उनके समझ में आती हैं या नहीं?"

"अब क्या रधिया के मामले में कोई दम नहीं रहा ?"

"वैसे तो कोई दम नहीं लेकिन अगर कालिज का कोढ़ ही साफ हो गया तो गुञ्जायश ही गुञ्जायश है।"

"बस इसीलिये प्रयत्नशील हों।"

"हाँ, अब तो कुछ करना ही होगा।"

"एक बात पूछ सकती हूँ, लेकिन इसे अन्यथा न समझेंगे।"

"हाँ, हाँ, पूछो।"

"क्या काशी में भी इसी तरह समस्यायें आपके पीछे पड़ी रहती हैं ?"

"वहाँ की न पूछो। वहाँ तो कुल आधा दर्जन परिवारों से अपना सम्बन्ध ही है। न इससे ज्यादा और न इससे कम। वहाँ कोई ऐसी झंझट नहीं। वह तो साधना की जगह है न। वहाँ तो चिन्तन, अध्ययन, लेखन इससे फुरसत ही नहीं। यहाँ तो जरा फालतू वक्त भी मिल जाता है। और इधर तीन चार साल में तो यही एक मौका मिला भी।"

"आप यहाँ रुकते ही कहाँ थे।"

"वही तो मैंने कहा।"

"तब तो ठीक है। खैर, आप जमकर इस समस्या को हल करने की कोशिश करें क्योंकि बड़े ही सवाब का काम है।"

"देखो पाप-पुण्य के पीछे तुम्हारी जाति पागल बनी रहती है। यहाँ तो जो उचित जँचता है वही करता हूँ। खैर अब सोया जाय।"

हम दोनों सो रहे।

९

"कल तो खूब आये।"

"क्या बतायें ? कुछ ऐसा काम ही आ पड़ा था।"

"कोई बात नहीं। आज सही, अच्छा मैं अभी भीतर से होकर आता हूँ।" कहकर खन्ना जी अन्दर चले गये।

इतने में मेरे आदेशानुसार रधिया भी वहाँ आ पहुँची। उधर घर में से चाय नाश्ता भी मेरे सामने आ पहुँचा। थोड़ी ही देर बाद खन्ना जी भी वापिस आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गये किन्तु रधिया को देखकर सकपका से गये और बोले—

"क्यों रधिया कैसे चली ?"

"कुछ मेरा फैसला सरकार ने नहीं किया अभी तक ?"

वह बीच में यकायक टपक पड़ी।

"मैं क्या कर सकता हूँ। जो कुछ स्थिति थी, वह सब तो जनाब से तुम्हें मालूम ही होती रही होगी। क्यों महाशय जी ?" कहकर मेरी ओर मुखातिब होकर देखने लगे। मैंने कहा—

"यह भी सामने है, आप भी मौजूद हैं, जो जिसे भी कहना सुनना हो कह ले। मुझे क्या ? जो मेरा फर्ज था वह मैंने किया।"

रधिया थोड़ी ऊँची आवाज में बोली—

"बड़े बाबू, आपने बहुत किया। अब मैं अपना फैसला अपने आप हासिल करूँगी। लोग औरतों को अबला समझते हैं लेकिन यह उनके दिमाग की खराबी है। अच्छा, सरकार तो मेरे साथ न्याय होना चाहिये। मेरे साथ घोर अन्याय हुआ है।"

"रधिया, मैंने कह दिया। यह जानें प्रिन्सिपल। यह उनका काम है। मुझसे क्या ?"

"जरूर, उनकी आग की जलती हुयी भट्टी में कूदने से इन्कार करूँ तो मुझे यह सजा मिले ? वह पैसे वाली हैं, रूप है, विद्या है, धन दौलत है, उनके आगे मेरी कौन सुनेगा लेकिन लोगों के कानों तक मैं अपनी आवाज और उनकी लीला पहुँचाकर छोड़ूँगी। जान मार दिया होता तो उतनी परवाह नहीं थी लेकिन मेरा पेट मारकर उन्होंने बहुत बड़ा जुल्म किया है। मैं जब तक उनकी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला कर नहीं छोड़ूँगी तब तक दम में दम नहीं लूँगी। मुझे मेरा पेट है प्यारा, उसकी उन्होंने हत्या की है। उनको उनकी बनावटी इज्जत प्यारी है, मैं उसकी हत्या करूँगी। तब मेरे हृदय में जलती हुयी प्रतिशोध की अग्नि शान्त होगी। बड़े बाबू, आप अब बीच में न पड़ेंगे। मैं जाती हूँ।" कहकर बिना कुछ कहे सुने वह पीछे घूम पड़ी और वहाँ से चली गयी।

मन ही मन मैं बहुत खुश हुआ कि चाहे जो हो उसने इन्हें सुनाया खूब। मैंने केवल उसे संकेत किया था लेकिन उसके मन में उठने वाले इस आन्दोलन की झलक मुझे आज ही मिली। कभी नहीं सोचा था कि रधिया भी इतनी कड़ियल होगी। कुछ क्षण तक कमरे में सन्नाटा रहा। मैं भी चुपचाप उसकी बातों की प्रतिक्रिया को जो खन्ना के चेहरे पर स्पष्ट थी, अध्ययन कर रहा था कि इतने में वे ही बोले—

"देखा भाई, चण्डी का रूप धारण कर लिया था इसने।"

"जमाना बड़ा ही नाजुक आ गया है। यह सर्वहारा समाज अब इतना जागरूक हो गया है कि जहाँ जरा भी इनकी हकतलफी हुयी नहीं कि संघर्ष के लिये तैयार हो जायँगे।"

"सही कहते हो। लेकिन दोस्त ज़रा समझाना इसे। नाहक बावेला मचाने से क्या फायदा ! तिल का ताड़ हुआ चाहता है।"

"देखो भाई मेरे चलते तो कोई अशोभन बात न हो सकेगी क्यों कि उसकी रोजी तो हम आप दोनों मिल कर चला सकते हैं लेकिन कालिज की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"

"यह तो हम तुम समझदार लोग समझ सकते हैं।"

"तभी तो जाहिलों से व्यर्थ लगा नहीं जाता मगर क्या कहें आपके प्रिन्सिपल को।"

"मैं भी कुछ ऐसा ही महसूस कर रहा हूँ। देखो, न हो तो शाम को चला जाय और तुम उन्हें समझा बुझा दो। मैं भी तुम्हारा समर्थन कर दूँगा। फिर खाने पीने के दौर दौरे में सारा मामला पटा लिया जायगा और कल से इस रधिया की पुनः नियुक्ति हो जायगी।"

"ठीक कहा।"

"हाँ, तुम अभी जाकर उसे समझा-बुझाकर शान्त कर दो।"

"यह बहुत ज़रूरी है वर्ना कौन जाने कहाँ-कहाँ जाकर क्या बक-झक मचाना न शुरू कर दे।"

"इनका क्या चलाना ? जल्दी जाओ।"

"अच्छी बात है। हाँ, आज छुट्टी ही है। दोपहर में तो रहोगे न।"

"हाँ, हाँ, कहीं चलना है क्या ?"

"देखो आ गया तो दिन-दिन कहीं घूम आया जायगा। यहीं पास के देहात में।"

"आ जाना, चले चलेंगे।"

"अच्छा।" कहकर मैं वहाँ से चलकर थोड़ी ही दूर आया था कि रास्ते में अविनाश मिला। उससे रामलाल की ससुराल का पता मालूम किया। तब उसने कहा—

"मैं भी वहीं मिल जाऊँगा आपको।"

"जरूर! देखो, ऐसा हो सके तो बड़ा बढ़िया हो कि श्यामा हम लोगों के सामने आकर रामलाल की सारी बातें बता दे।"

"मैं उसे जो पट्टी पढ़ा दूँगा कि वह रास्ते पर आ जायगी। इतना ही कहना है कि ऊषा शर्मा के खिलाफ़ जाँच करने आये हैं। बस वह अपने आप सारी बातें सच-सच बता देगी।"

"तुम बहुत ही होशियार हो।"

"तो कब तक आप लोग वहाँ आ रहे हैं?"

"दो बजे तक वहाँ पहुँच जायँगे।"

"ठीक है। मैं चला। पहले ही से पहुँच जाना है।" कहकर अविनाश वहाँ से चलता बना।

घर पर रधिया मिली। उस वक्त तक उसके चेहरे की सुर्खी नहीं गयी थी। मैंने कहा—

"रधिया! तू बहुत ही आपे से बाहर हो गयी थी?"

"क्या करती बड़े बाबू? खून खौल रहा था। इधर दो तीन दिनों के काण्ड से मैं भी भली भाँति परिचित हूँ। ऊषा जैसी स्त्री को उल्टा टाँगकर सरे बाज़ार हन्टर से पीट-पीट कर मार डालना चाहिये।"

"सो तो ठीक है लेकिन कालिज की प्रतिष्ठा।"

"यही बात तो बीच में आ जाती है। वर्ना मेरे मामले का कभी ही फैसला हो गया होता।"

"देखो, शान्ति और धैर्य नहीं खोना चाहिये। मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। अभी थककर हारा नहीं हूँ। साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे! मेरा यही ख्याल है।"

"इससे बढ़कर और बढ़िया बात क्या हो सकती है। खैर, आपकी आज्ञा जो होगी वही करूँगी। लेकिन मैनेजर साहब का मिजाज कुछ रास्ते पर आया या नहीं?"

"बहुत कुछ। घबड़ाओ नहीं। आज तो सारा दिन और रात के कई घन्टे तक उन्हीं के साथ रहना है।" कहकर नहाने धोने में मैं लग गया।

निश्चित समय पर हम दोनों दोस्त शहर से एक मील पच्छिम 'पपीता' गाँव की ओर चल पड़े। कुछ दूर तक रिक्शे से गये लेकिन खेतों के बीच पैदल चलने का शौक चर्राया था। इसलिये चने के खेतों में से होकर उस गाँव के पास से गुजर ही रहे थे कि इतने में दूर पर दिखायी पड़ गया अविनाश। मैंने उसे पुकारा और क्षण भर में वह पास आ गया और हम दोनों को अभिवादन करके बोला—

"अरे! आप लोग इधर कैसे?"

"तुम बताओ अपना पहले।" मैंने कहा।

"कुछ न कहिये। रामलाल को आप जानते होंगे शायद। वकील साहब के कालिज का एक क्लर्क है।"

"हाँ, हाँ, समझ गया।"

"जी, उन्हीं की बीबी उनसे लड़-झगड़ कर आयी हैं। यहाँ भी कुँयें में कूदने जा रही थीं। खैर लोग पहुँच गये कि वह ऐसा कोई काण्ड नहीं कर सकीं।"

"अरे! आखिर क्यों यह सब?"

"अपने को कुछ विशेष मालूम नहीं। पति-पत्नी का झगड़ा है।" कहकर वह चुप हो रहा।

अब मैंने खन्ना जी से कहा—

"कहिये बड़े भाई। बेचारा राम लाल कितना नेक लड़का है और उसकी बीवी इतनी प्रचंड।"

"तकदीर की बात है। आपसी झगड़ा है, मिट जायगा।"

"सो तो ठीक कहा आपने लेकिन जब इधर आ पड़े हैं तो जरा चलकर हमलोग उसे समझा दें। जब वह आत्महत्या करने पर

हो गयी है तब ऐसी खबर को जानकर कुछ न कुछ करना ही चाहिये।"

"लेकिन कहीं अपने लोगों की ही आबरू पर न बन आये।"

"वह जान न दे, इतना ही उसे समझा देना है। हमलोगों की आबरू पर छींटे डालने की उसकी थोड़े ही हिम्मत पड़ेगी।"

इसी समय अविनाश ने कहा—

"मैंने उसे धमकाया था कि कालेज के मैनेजर साहब वकील हैं; जान देने का ख्याल छोड़ दो नहीं तो पुलिस को जरा-सा एक स्लिप लिख भेजेंगे तो सारी बाई पच जायगी। बारे, इस बात का उसपर बड़ा असर हुआ।"

"बड़े भइया, कुछ इधर-उधर न सोचो। बस चले ही चलो।"

"अच्छी बात है भाई। अपने चलने से अगर किसी का बिगड़ा काम बन जाय तो इससे बढ़कर और कौन-सी बढ़िया बात हो सकती है।"

श्यामा के बाप पुराने जमाने के अवकाश प्राप्त पटवारी थे। अब तो उनकी उमर पैंसठ से ज्यादा की हो चली थी। खैर हम लोगों के पहुँचते ही गाँव के लोग खातिर तवाजह में लग गये। जल-जलपान के पश्चात् एक छोटी-सी कोठरी में दरी बिछी थी। वहीं हम दोनों जाकर बैठ गये। और दरवाजे की आड़ में श्यामा बैठी और उसी के समीप बैठा अविनाश। मैंने ही शुरू किया—

"बेटी! घर-गृहस्थी की झंझटों से ऊबकर कलह नहीं करना चाहिये। बताओ, तुम शरीफ घर की लड़की ठहरी।"

श्यामा ने कहा—

"चाचाजी! मेरा जरा भी कसूर नहीं है। सारा दोष उन्हीं का है। रोज-रोज वह ग्यारह बजे रात के पहले घर आते नहीं थे। आखिरकार पता लगा कि प्रिन्सिपल के यहाँ रात को भी दो-तीन घन्टा अपना

दफ्तर खोलकर काम करते हैं। जब बारीकी से पता लगाया गया तो वहाँ कुछ दूसरी ही बात निकली। मैं उस बात को जबान पर लाकर न खुद, न आप लोगों को शर्मिन्दा करना चाहती हूँ। सब कुछ सहती रही लेकिन जब देखा कि इनकी यह नौबत आ गयी कि एक्सरे से टी० बी० का शक होने लगा, तब मुझसे सहा न गया। ऊषा मेरा सुहाग लूट लें, यह मैं कैसे सह सकती थी। बस उस दिन रात को छोटे बच्चे को साथ लेकर गयी तो वहाँ देखा, दोनों नशे में धुत्त हैं। मेरी आँखों में खून उतर आया। उन्हें पकड़ कर मकान से बाहर करना चाहा कि इतने में दोनों मुझ पर टूट पड़े और मेरी खूब मरम्मत की। मेरे सिर के घाव अब भी नहीं भरे हैं। उनकी तबीयत इतने से भी नहीं भरी तो रात में घर पर आकर मेरे साथ जोर-जुल्म करते रहे। सुबह घर छोड़कर मैं यहाँ चली आयी। क्या जान देने के लिए वहाँ रह जाती।" इतना कहकर वह चुप हो गयी।

खन्नाजी का चेहरा स्याह पड़ गया था तब तक। बस उधर उसकी बात खतम हुई और अपने पेशाब के बहाने उस कोठरी से जो बाहर निकले तो बाहर ही रह गये! उसे मामूली तौर पर समझा कर तथा रामलाल—ऊषा का सम्बन्ध विच्छेद कराने का वायदा करके हम दोनों कोठरी के बाहर आये।

अविनाश वहीं रुका रह गया लेकिन हम दोनों घूमते-टहलते घर आये। रास्ते भर खन्नाजी मौन रहे। मैं भी चुप रहा। पाँच बज गया था। अतः चाय पानी हुआ। इसी वक्त मैंने उन्हें याद दिलायी—

"क्यों भई, चलना है न हम लोगों को शर्माजी के यहाँ।"

"जाने दो, व्यर्थ है।"

"ठीक है तो मैं चलूँ?"

"ठहरो, जाओगे कहाँ। कौन-सी इतनी जल्दी पड़ी है।"

"बड़े भाई, इतने खामोश हो गये हो कि बैठे-बैठे आलस-सा महसूस करने लगा हूँ।"

"स्वप्न में भी नहीं ख्याल किया था कि ऐसा भी हो सकता है।"

"बड़े भाई! यह जीवन है। यहाँ क्या नहीं सम्भव है।"

बस इसी वक्त शामत का मारा आ पहुँचा वहाँ रामलाल एक कोई तार लेकर। मैनेजर के नाम प्रान्तीय सरकार का कोई तार था। खन्ना जी ने उसे देखा और एक स्लिप पर आवश्यक आदेश लिखकर उस काम से छुट्टी पायी। उसी वक्त रामलाल उठकर जाना ही चाहता था कि उन्होंने उसे रोका और मेरी ओर देखकर बोले—

"चलो भीतर चला जाय, वहीं बातें होंगी। आओ रामलाल तुम भी।"

"जी अच्छा।" कहकर वह भी हम लोगों के पीछे हो लिया।

आमने-सामने हम दोनों बैठे और बीच में रामलाल। खन्नाजी बोले—

"हैं तो हजरत सामने ही। जो पूछना हो पूछ लो।"

उनका इतना इशारा काफी था। बस मैं उसके सर पर सवार ही तो हो गया। जेब से एक फोटो निकाली तथा उसे दिखा कर बोला—

"रामलाल। यह फोटो तुम्हारी ही है न?"

"जी हाँ।"

"तुम्हें टी० बी० की शिकायत है।"

"जी अब तो ठीक हो गयी है।"

"जरा अपने कपड़े उतार दो।"

"लीजिये। जाड़े में यह मुसीबत!"

"अच्छा रहने दो। हाँ, अपने बदन पर उभड़ी हुई नीली नसों के लिये तुम्हारे पास क्या जवाब है?

"कम तनख्वाह, ज्यादा परिवार, अकेला कमाने वाला।"

"तुम झूठ बोलते हो।" मैंने जरा डाटकर पूछा।

खन्ना ने भी आँखें तरेर कर कहा—

"देखो, इनके सवालों का ठीक-ठीक जवाब दो वर्ना अभी पुलिस के सिपुर्द समझो अपने को। मैं तुम्हारी सारी बातें जानता हूँ।"

"बातें तो किसी की किसी से छिपी नहीं हैं मैनेजर साहब।"

"शटअप। बदज़ात।"

खन्ना की डपट से सिकुड़ गया रामलाल। मैंने कहा—

"देखो रामलाल! गाल बजाने से फायदा नहीं। अभी हम लोग तुम्हारी माँ और बीवी से मिलकर आये हैं। तुम्हारी बदकारी की सारी रिपोर्ट ऊषा से भी हासिल कर चुके हैं। किसी शरीफ औरत के घर में शराब पीकर जाओगे और तुम्हारी बीवी जब तुम्हें घर लिवाने जायगी तो उसे पीटोगे। यही तुम्हारा कर्म रह गया है।"

रामलाल चुप रहा। उसकी निगाहें नीचे ही रहीं।

"बोलो, जवाब क्यों नहीं देते? क्या ये सारी बातें झूठी हैं?"

"लेकिन मेरे झूठ कह देने से तो ये बातें झूठ नहीं मान ली जायँगी। मेरी कौन सुनेगा ही प्रिन्सिपल के आगे?"

"नहीं, कोई बात हो तो कहो। हम लोग प्रमाण स्वयं प्राप्त कर लेंगे। असलियत नहीं छिपायी जा सकती।"

"मैं अपनी गल्तियाँ मंजूर करता हूँ लेकिन इन्साफ करने का वायदा कीजिये तो सारी बातें सुना जाऊँ।"

"जरा भी हकतलफी न होगी। इतना ही नहीं, तुम्हें माफी मिलेगी।"

"मेरी ये नीली नसें, टी० बी०, उस दिन की मारपीट, शराब की आदत, यानी सारी बदकारी की बुनियाद हैं मिसेज़ शर्मा। इसीके लिये मुझे चालीस रुपये महीने मिलते हैं। फिर भी दस प्राणियों का खर्चा इतने में सटना मुश्किल हो जाता है। मुझे रात में कम दिखायी

देता है। मेरे खून का एक-एक कतरा उन्होंने चूस डाला है। कैसे चल फिर पाता हूँ, यही ताज्जुब की बात है। किसी डाक्टर से मेरी परीक्षा करा लीजिये। मुझे दस लोगों की परवरिश करनी है। इसलिये मैंने अपने को बरबाद हो जाने दिया। मेरी गरीबी और उनकी वासना दोनों इसके लिये जिम्मेदार हैं।"

"रामलाल! अब भी नहीं बिगड़ा है। वक्त है, सम्भल सकते हो।"

"जो आज्ञा दें। कहें तो इस्तीफा दे दूँ। बालबच्चों का जो होगा, देखा जायगा।"

"इसके लिये घबड़ाओ नहीं। तुम्हें दूसरी जगह काम दिला दिया जायगा लेकिन जब तुम्हारे मैनेजर साहब कहेंगे तब इस्तीफा देना। अभी काम करो लेकिन एक वायदा करो।"

"जरूर करूँगा।"

"नहीं, बोलो, उसपर अमल करोगे?"

"जी ज़रूर...."

"देखो आज से ऊषा के घर कभी न जाना।"

"कभी नहीं जाऊँगा।"

"और इन सारी बातों को पी जाना होगा।"

"वाह! इतना छिछला थोड़े ही हूँ, लेकिन क्या शर्मा जी को सजा नहीं मिलेगी।"

"देखते जाओ सिर्फ। अच्छा तुम जा सकते हो।"

इसी वक्त मैनेजर खन्ना ने भी कहा—

"देखना ये बातें भूलना नहीं। अच्छा जाओ।"

रामलाल हम लोगों को अभिवादन करता हुआ चला गया।

अब हम दोनों क्षणभर एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। फिर मैंने ही कहा—

"अच्छा मुझे भी आज्ञा है न ?"

"सुनो भी, अच्छा मैं ऊषा से इस्तीफा दे देने की बात चलाता हूँ। कल करीब नौ बजे आ जाना। भूलना नहीं, तब तक मैं भी उनके यहाँ से लौट आऊँगा।"

"अच्छी बात है।" कहकर मैं वहाँ से घर की ओर चला लेकिन रास्ते में मैंने सोचा, देखूँ, कहीं रामलाल ऊषा के यहाँ तो नहीं चला गया।

ग्यारह बजे रात तक ऊषा के बगल वाले मकान के बरामदे में एक परिचित का मकान था। वहीं बैठकर उसको 'वॉच' करता रहा लेकिन रामलाल नहीं दिखायी पड़ा। सोचा, वायदे पर अमल किया और वहाँ से मैं उठकर चला। इतने ही में उनके मकान से रामलाल निकला और साइकिल से दूसरी तरफ चला गया।

मैं उस नौजवान के वायदे पर गौर करता हुआ घर पहुँचा। बहुत देर हो गयी लेकिन रोज़ की रिपोर्ट लिखानी तो थी नहीं, लेकिन सुनानी ज़रूर पड़ती थी। यह सब करते-धरते काफी रात बीत गयी लेकिन जाड़े की लम्बी रात होती है, इससे कोई खास तकलीफ नहीं हुयी।

१०

"रात भर जैसे आपको नींद ही न आयी हो, जो इतने सबेरे-सबेरे चले आ रहे हैं।"

"भाभी! क्या बतायें, कुछ स्वभाव ही अपना ऐसा है कि बस जिस काम के पीछे पड़ गया तो...."

"लाठी लेकर....अच्छा, चाय अभी तैयार ही है, हाँ, आज सुबह आपके बड़े भइया न जाने कहाँ गये। शायद शर्मा जी के यहाँ....कल की सारी बातें मुझे मालूम हैं। अच्छा, अभी आती हूँ, कहकर क्षमा अपने रसोई घर में चली गयीं।

मैं उनके कमरे में पड़ा-पड़ा कल का अखबार उलटने लगा। इतने में वहाँ आ पहुँची रधिया। उसे देखते ही बोला—

"तू भी आ पहुँची लेकिन मुँह पर ताला लगाये रखना होगा।"

"जो आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगी।"

"घर से होकर आ रही है न?"

"जी, मालकिन से सारी बातें मालूम कर चुकी हूँ, इसलिये उत्सुकता वश यहाँ तक चली आयी। बहू जी...."

"जा, जा, उनसे भी...."

रधिया और क्षमा देवी की प्रेम पूर्ण बातें होने लगीं। बस दीवाल का ही अन्तर था। दोनों धीरे-धीरे बातें कर रही थीं लेकिन मैंने उसे सुनने की चेष्टा की। पहले तो रधिया को देखकर क्षमा दिल खोलकर उससे मिलीं और अपने पास ही अँगीठी के नजदीक उसे बिठा लिया। बगल वाले कमरे में खुलने वाली खिड़की से मैंने झाँका तो सब कुछ साफ दिखायी दे रहा था। क्षमा ने उससे कहा—

"रधिया, पहले तू एक काम कर।"

"आज्ञा बहू जी।"

"अपने सूती 'झूले' के ऊपर यह मेरा 'पुल ओवर' पहन ले। सर्दी, देख, कितनी पड़ रही है।"

"यह आप क्या कर रही हैं। हम लोगों को जाड़ा नहीं लगता।"

"संकोच की बात नहीं।"

"बहूजी इसके लिये मजबूर न करें।"

"तो बुलाऊँ अपने देवर जी को।"

"नहीं, नहीं, अभी पहन लेती हूँ।" उसने उसे पहन लिया। क्षमा ने कहा—

"तू भी बड़ी ही मुसीबत में पड़ गयी है लेकिन घबड़ाना नहीं चाहिये।"

"नहीं बहूजी, क्या है, करना तो है मजदूरी ही। न यह काम सही, दूसरा काम करके पेट पाल लेगें। यही है कि मेरी पढ़ाई का सिलसिला टूट जायगा।"

"ऐसा न सोच। इरादा पक्का है तो कामयाबी मिल के रहेगी। रुकावटें दुख का चोला पहन कर आती हैं। किन्तु उनका दिलेरी से सामना कर। स्कूली तालीम से ज्यादा जरूरत है जीवन में संस्कारिता की। स्कूली किताबें तुझे शिक्षित बना दें भले ही लेकिन जीवन की पाठशाला की पढ़ाई जब तक पूरी न कर लेगी तब तक तेरा पढ़ना-लिखना बेकार ही होगा।"

"सो तो ठीक कहा लेकिन गरीबी तन को भी ले डूबती है और मन को भी! तन-मन दोनों को चङ्गा रखना पड़ता है। तन के लिये भोजन, कपड़ा, मकान चाहिये और मन के लिये शान्ति। यहाँ किसी का भी ठिकाना नहीं।"

"रधिया, तन तो बीमार नहीं है लेकिन मन मेरा बराबर रुग्ण ही रहता है। मन पर संयम न रखूँ तो यही घर मेरा नरक हो जाय। कलह के विस्फोटक बम रोज ही फूटा करें। ऐसी-ऐसी उत्तेजनात्मक परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि अपने को सम्हालना मुश्किल हो जाता है। यह तो गृहस्थी का जञ्जाल है न। यह जिन्दगी बड़े ही ब्योरे और विस्तार की चीज है। बड़ा सँभलकर चलना पड़ता है। चारों ओर निगाहें रखनी पड़ती हैं। कितनी ही बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है लेकिन दुःख को, वेदना को, बीमारी को मैं सत्य और नित्य नहीं मानती। जिन्दगी में ये सब आते ही रहते हैं।

जिन्दगी का बिरवा इन तमाम काँटेदार मुसीबतों के बीच भी पनपता, फलता और फूलता रहा है और रहेगा।"

"बहूजी! ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं।"

"बड़ी-बड़ी बातों से ही बल मिलता है। जीवन और मृत्यु ये दो चीजें हैं। जीवन को जो सत्य समझते हैं वे कठिनाइयों के सिर पर पैर रखते हुए आगे बढ़ते रहते हैं और जो मृत्यु को सत्य समझते हैं वे जरा-सी मुसीबत का झटका खाते ही संखिया खाकर सदैव के लिए सो जाते हैं। निराशा हमारे पैर पकड़ कर खींचती है और आशा हमें आगे बढ़ने को प्रेरणा देती है। रधिया! मैं लखपती की बेटी हूँ, मेरे घर मेरा कितने लाड़-प्यार से लालन-पालन हुआ लेकिन आज यहाँ हूँ। अब यही मेरा घर है। इसी को मुझे स्वर्ग बनाना है। आज सात, आठ साल के बीच मुझे जिन मुसीबतों में से होकर गुजरना पड़ा है वह मैं ही जानती हूँ और आज भी स्थिति कोई विशेष अच्छी नहीं है लेकिन मैंने परिस्थितियों के हाथ कभी पराजय स्वीकार करना सीखा ही नहीं। एक काम अगर तू कर सके तो देखेगी कि तुझे बड़ी से बड़ी मुश्किल भी परेशान न कर सकेगी।"

"जरूर करूँगी बहू जी, बताइये।"

"देख! आज पाँच साल से मैं भी यही करती आ रही हूँ। सुबह सुबह चारपाई छोड़ने के पहले पति के चरणों में, मन ही मन, सिर नवा कर इन वाक्यों को दुहरा लिया कर। मैं निश्चय करती हूँ कि—मुसीबतें मेरा बाल बाँका न कर सकेंगी, दुःख के हाथों हार नहीं मानूँगी निराशा मुझे हतोत्साहित नहीं कर सकती। जबान पर काबू रखूँगी, जीवन सच है शेष मिथ्या।"

"बस इतनी सी बातें। मन ही मन इन्हें दुहरा लिया करूँगी।"

"माला पर जैसे मन्त्र जपा जाता है वैसे ही इन बुनियादी बातों का नित्य प्रातः स्मरण करके तब चारपाई छोड़ना।"

"बहूजी, देखें, पानी कब से गरम हो रहा है।"

"अरे ! हाँ रे ! मैं तो भूल ही गयी थी।" बस झटपट उसे उतार कर देखते-देखते चाय तैयार कर डाली और आलमारी में से नमकीन निकाल प्लेट में उसे रख रधिया को चाय नमकीन आदि मुझे दे आने को क्षमा ने आदेश दे डाला।

चाय पीते हुये मैं चुपचाप क्षमा के व्यक्तित्व पर गौर करने लगा कि इतने में सुना, रधिया को चाय पिलाने को वह हठ कर रही हैं। क्षमा ने उसे चाय पिला कर ही छोड़ा। थोड़ी देर में दोनों आकर पास ही पास बैठ गयीं। मैंने कहा—

"भाभी, मैं भी तुम्हारे मन्त्र का जप कल से आरम्भ करूँगा।"

"कैसा मन्त्र ?"

"वही जो रधिया को...."

"सचमुच, तुम बड़े वैसे हो। यह तो हम लोगों की आदत है कि कोई दो लोग बात करते हों तो छिपकर कान लगा कर दीवाल से सटकर उसे सुनें लेकिन तुम्हारे में यह ऐब कब से आ गया ?"

"संसर्ग का दोष है।"

"यह बात है"—मुस्काती हुयी भाभी कहती गयीं—"तब तो ज़रा बचकर रहना क्योंकि तेज़ी से आजकल ज़माना उलट-पुलट हो रहा है।"

"समझ रहा हूँ। अभी तक सिर्फ मानसिक परिवर्तन ही हो रहे हैं, कायिक परिवर्तनों के लक्षण नहीं दिखायी पड़े हैं डाक्टरों को।"

"लेकिन मन बदला तो तन बदलते कितनी देर लगेगी। इसलिये एक विनती है।"

"वह क्या ?"

"यही कि....लेकिन रधिया के कारण कह नहीं सकती।" रधिया ने तुरन्त कहा—

"बहू जी, मैं दूसरे कमरे में चली जाती हूँ।"

"नहीं, नहीं, क्या""अच्छा, अभी तक तो आपके बड़े भैया भी नहीं आये! समस्या गम्भीर है न।"

"इसमें क्या सन्देह ? लेकिन भाभी, तुम्हारा क्या ख्याल है ? ऊषा शर्मा का इस्तीफा वह लेकर आते होंगे या नहीं।"

"क्या तमाशे की बात कहते हो ? इतने अनुभवी होकर ऐसी बातें करने लगते हो। इस्तीफा क्या कोई मामूली बात है।"

"बड़े भैया का मन उनकी तरफ से फिर गया है और कल दिन भर कुछ ऐसी चीज़ें एक के बाद एक होती गयीं कि उनके मन का अँधियारा बिलकुल दूर हो गया।"

"कल की बात कल ही खतम हो गयी। अभी तो वहाँ बहस-मुबाहसा चलता होगा। ऊषा कोई भी तरकीब काम में लाना क्या छोड़ रखेगी ? अपनी दलीलों से अपने को पाक साफ साबित करेगी। और आखिरी हथियार तो जो चलायेगी और अपने रूप का सम्मोहन एवं जादू की छड़ी उनके सिर पर ऐसा फेर देगी कि वह कल की सारी बातें भूल जायँगे। फिर हाथ कंगन को आरसी क्या ? अभी आते ही होंगे! मैं तुम्हें हतोत्साहित करने के लिये ये बातें नहीं कर रही हूँ। दुश्मन को छोटा न समझना चाहिये और थोड़ी कामयाबी मिल जाने पर रुक भी न जाना चाहिये। वह मान गयी तो ठीक नहीं तो उसे कैसे विवश करोगे मानने को, इस पर बराबर विचार करते रहो। हंगामा मचाकर कालिज की प्रतिष्ठा, अपने दोस्त की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाना ठीक नहीं। है तुम्हें दूर करना गन्दगी ही लेकिन ऐसा करते हुये तुम्हें इस बात का भी ख्याल रखे रहना है कि समाज के शरीर पर वह गन्दगी उड़कर न पहुँच जाय, तुम पर खुद उसके छींटे न आकर पड़ जाँय।"

बस इसी वक्त रधिया बीच में बोल बैठी—

"बहू जी, माफी दें तो मैं भी एक छोटी सी बात कह दूँ।"

"हाँ—हाँ—खुशी से।"

"कपड़े में चकती लगाते-लगाते जब उसकी धज्जी उड़ जाने को होती है, तब उस कपड़े को फेंककर नया कपड़ा काम में लाया जाता है।"

"ठीक कहती है। लेकिन यह तो अन्तिम स्थिति की बात है। जब रोग पर किसी किस्म का इलाज काम नहीं कर पाता, तभी उस इलाज का प्रयोग किया जाता है, जिससे रोगी या तो मर ही जाता है या बच ही जाता है।"

मैंने कहा—

"भाभी मैं हर स्थिति के लिये कमर कस कर बैठा हूँ लेकिन काम करते-करते थकावट आने लगती है। वह शिथिलता मन में आरामदेह भावनाओं को, कल्पनाओं को जन्म देती है। आदमी सोचने लगता है कि चलो, काम हो ही जा रहा है, बहुत ज़िल्लत से जान बची, नहीं तो न जाने क्या होता, क्या नहीं। खैर, सम्भव हो, तुम्हारा ही अनुमान सच हो लेकिन अभी तो अनुमान ही लगाना है।"

मैं मुश्किल से वाक्य पूरा कर पाया था कि वकील साहब के आने की आहट मिली। मैं उठकर उनके प्राइवेट रूम की ओर बढ़ा कि उनसे सामना हो गया। दोनों जाकर वहीं बैठ गये। खन्ना जी बोले—

"अभी आये?"

"हाँ, यहीं...."

"ऊषा के यहाँ से आ रहा हूँ।"

"वह तो मालूम है मुझे।"

"हाँ, हमारे सामने रामलाल, श्यामा, रधिया और ऊषा-चार लोगों की बातें हैं और चारों की बातों में असलियत क्या है, इसी की छानबीन करनी है।"

"वह सब तो आप करते ही रहेंगे लेकिन आप ऊषा से इस्तीफा हासिल करने गये थे न ?"

"गया तो था इसी इरादे से लेकिन हर इन्सान को अपनी सफाई पेश करने का मौका देना ही चाहिये।"

"यह तो लम्बा रास्ता आपने पकड़ा। अच्छा, फिर क्या कर आये ?"

"ऊषा को एक सेकेण्ड भी मैं कालेज 'प्रेमिसेज़' में नहीं देखना चाहता लेकिन सब कुछ कायदे से करना है। मैंने उसे हर तरह से समझाया, डराया, धमकाया, सब कुछ करके हार गया लेकिन उसने इस्तीफा देना मंजूर नहीं किया। उसने ऐसी जिद पकड़ ली है कि मुझसे तो कुछ करते ही नहीं बन पड़ रहा है। फिर उसकी कुछ बातें भी ऐसी हैं, जिसके प्रमाणित होने पर वह निर्दोष सिद्ध हो जायगी। इसकी भी उसे आशा है।"

"सब कुछ ठीक कहते हैं आप लेकिन उसका चरित्र भ्रष्ट है कि नहीं ? पहले आप इसका उत्तर दें। किसी चीज़ का प्रमाण न मिले तो क्या कोई तथ्य, जो और तरह से सच और साबित हो, झूठ मान लिया जाये ?"

"आचरण का जहाँ तक सम्बन्ध है उसमें तो जरूर गड़बड़ी है।"

"तब आखिर किस बात का प्रमाण खोजना है। बड़े भाई, मैं समझ रहा हूँ। उसने उल्टा सीधा समझा कर आपके इरादे को बदल दिया है। लेकिन यह कोई अच्छी बात थोड़े ही है।"

"तुम तो नाहक नाराज़ हुये जा रहे हो। क्या बताऊँ ? अजीब मुसीबत में पड़ गया। 'पब्लिक लाइफ' भी एक जहमत ही है। सच कहता हूँ, कभी ऐसी कठिनाई में नहीं पड़ा था।"

"इसके पैदा करने वाले हैं आप स्वयं। स्थिति उत्पन्न कर देना आसान है लेकिन उसका सम्भालना मुश्किल होता है।"

"मुझी पर इलजाम लगाये जा रहे हो। गेहूँ के साथ घुन भी पिसा जा रहा है।"

"जरूर ही पिसा जायगा। गेहूँ के देह में घुन घुसकर उसको चाल डालता है, उसमें जो भी सत्व रहता है, खुद खा जाता है। उससे उसके शरीर को सुख मिलता है। मज़ा मारता है जब उसके मत्थे तो उस गेहूँ के दाने पर मुसीबत आयेगी तो कौन साथ देगा। बड़े भाई, बड़ी यारबाशी हुयी है आप दोनों साहबान की। खैर, अब तो पता ही चलेगा। आपसे कुछ करते-धरते नहीं बनेगा। अच्छा, आज्ञा दें।" कहकर बिना उनकी कोई बात सुने मैं जाने लगा लेकिन उन्होंने हाथ पकड़कर मुझे बिठा लिया और बोले—

"मुझे इतना कमजोर समझ लिया है? कैसे समझते हो कि मैं कुछ नहीं कर सकूँगा?"

"बुरा न माने तो कहूँ।"

"तुम्हारी बातें तो कभी मुझे बुरी लगती ही नहीं।"

"तो सुनिये, आप दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।"

खन्ना जी निगाहें नीची किये विचारों में मग्न हो गये और मैं उठकर चला आया भाभी के कमरे में और बोला—

"भाभी, भविष्य वक्ता भी हैं आप? अच्छा, रधिया चल घर। मैं थोड़ी देर में आता हूँ। वहीं रहना।" कहकर मैं वहाँ से तुरन्त निकला और अविनाश के घर उसे देखता हुआ अपने घर जा पहुँचा? वह तो मिला नहीं लेकिन सन्देशा उसको मिल जाय, ऐसी व्यवस्था करता आया।

मेरी देवी जी तथा रधिया—दोनों, मेरा मुँह टुकुर-टुकुर निहारती हुयी बड़े ही ध्यान से सारी बातें सुनती रहीं। इस क्षण तक की सारी बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी बातों से उन दोनों को परिचित कराने के पश्चात् मैं बोला—

"स्थिति बड़ी ही गम्भीर है। सोच रहा हूँ, क्या करना चाहिये लेकिन जो भी कदम उठाया जाय, वह बहुत ही सोच समझकर।" इतना कहकर मैं मौन हो रहा। मेरी देवी जी भी कुछ सोचती रहीं लेकिन शक्ति, स्फूर्ति और चेतना की मूर्ति रधिया मुझे चुप देख कर बोली—

"बड़े भैया! एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर रही है। उसे निकाल बाहर करना होगा और यह काम आपसे या मैनेजर साहब से नहीं होगा। सोचिये, एक की करनी से कितने लोग मुसीबत भोग रहे हैं। एक के रहने से एक सौ, एक हजार, एक लाख, एक करोड़ को आफत है और एक के न रहने से उतने ही को आराम। इसलिये सीधा-सा उपाय है लेकिन इसे मैं ही कर पा सकती हूँ। बस आपकी आज्ञा भर की देर है। एक लपलपाता छुरा...." उसकी आँखें लाल हो उठीं।

"बस, बस, ऐसी बात जबान पर फिर कभी न लाना। जोश में नहीं आ जाना चाहिये। वैसे मैं जोश को बुरा नहीं कहता लेकिन बुद्धि द्वारा इसे नियन्त्रित एवं नियोजित करना चाहिये। आश्चर्य की बात है, तू इतनी जल्दी चीजों को भूल जाती है। अभी-अभी क्षमा भाभी ने तुझसे क्या कहा था? जीवन को सत्य और शक्ति समझने की सीख लेकर आयी है वहाँ से और अब मृत्यु का आलिङ्गन करना चाहती है? मौत की लहू से जिन्दगी का बिरवा सींचना चाहती है? जिन्दगी के बिरवे को विश्वास दे, गति दे, जीवन दे, शक्ति दे, स्फूर्ति दे। सोचती है, एक मर जायगा तो समस्या हल हो जायगी। किसी की पीठ में छुरा भोंक कर मार देना या खुद अपने पेट में छुरा भोंक कर मर जाना—दोनों एक ही बात है। पहले काम के कसूरवार को फाँसी की सजा मिलती है और दूसरा तो खुद जुर्म करता है और साथ ही साथ उसकी सजा भी अपने आपको देता जाता है। समाज

पहले किस्म के लोगों को दण्डित करता है और दूसरी तरह के लोगों को उनका व्यक्तित्व ही समाज की जगह ले लेता है। रधिया, यह गलत रास्ता है। जरा और ऊँचे उठकर देख। ऊषा का फेल बद है। उनसे तमाम परीशानियाँ हैं। ठीक है, जैसे भी हो, उन्हें तू निकाल बाहर कर सकती है लेकिन यहाँ से माना बुराई दूर हुयी लेकिन दूसरी जगह जाकर वह फिर क्या डेरा नहीं डालेगी? एक छोटे से दायरे में सोचना बन्द कर दे। यहाँ हमारे तुम्हारे बाल-बच्चे पढ़ते हैं, दूसरे शहर में हम लोगों के सम्बन्धियों के। इसलिये प्रधान समस्या इतनी छोटी-सी नहीं है कि वह सिर्फ ऊषा के ही हट जाने से हल हो जाय।"

"यह आप क्या कह रहे हैं बड़े भैया। तब तो सारी जिन्दगी इसी में खप जायगी।"

"तब क्या चमचमाता हुआ छुरा चलाना है? जीवन की सारी साधना निछावर कर देनी पड़ेगी। आखिरकार, ऊषा भी कोई गैर नहीं है। वह भी अपनी माँ, बहिन, बेटी ही है और उसमें बुराइयाँ आ गयीं हैं इसलिये उसे और कुछ तो समझा नहीं जा सकता। उसकी बुराइयों की बुनियाद में बैठकर उनका कारण जानना होगा। तरकीब सोचना है, कोई उपाय काम में लाना है ताकि उसके शरीर के पोर-पोर में पैवस्त बुराई की एक बूँद भी उसमें न रह जाये। उसका व्यक्तित्व निरोग हो जाय ताकि उसके गन्दे कपड़े पर भिनभिनाने वाली मक्खियाँ एक जगह से उड़कर दूसरे के जिस्म पर बैठकर समाज के अन्य लोगों को रुग्ण न कर सकें। लेकिन यह महा समस्या है, मूल समस्या है और हमारा लक्ष्य इसी का समाधान होना चाहिये। फिर शुरू-शुरू में यदि ऊँचा लक्ष्य बना लिया जाता है तो कामयाबी आसानी से मिल जाती है। मैं अब महसूस कर रहा हूँ कि शुरू में ही मूल समस्या पर जो प्रहार करना प्रारम्भ किया गया होता तो अब तक

कहाँ से कहाँ निकल गये होते लेकिन कोई बात नहीं। अब तो जो कुछ सामने है, जो वर्तमान स्थिति है, उसी का सामना करना होगा।"

"बहुत बड़ी बात है और बहुत बड़ी दुनिया है।"

"ठीक कहती है। ऊषा बुरी है लेकिन हमारा तुम्हारा सारे समाज का कर्त्तव्य है कि उसे भली बनायें। इसमें सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है। किन्तु अब इस पर सोचने लगूँगा तो जहाँ तक कामयाबी मिल चुकी है, वह भी हाथ से निकल जायगी। आखिर मैनेजर का मन भी डाँवाडोल हो उठा है। ऊषा के खिलाफ जो एक बात भी सुनने को तैयार नहीं थे, वह उससे त्याग पत्र प्राप्त करने के लिये प्रयत्न शील तो हुये। क्या यह कम बात हुयी?"

"बड़े भैया, आप बहुत ही सरल हैं। जो कोई कुछ भी कह देगा, उसे आप यकीन कर बैठेंगे। सच मान लेंगे लेकिन आदमी कहता है कुछ और करता है कुछ। अपने मन में उसने छल-कपट की एक कोठरी बनायी है। इसी पिंजरे में उसने अपने इन्सानियत के पत्नी को कैद करके रख छोड़ा है। अच्छा, क्या आपको विश्वास है कि...."

"मेरे भी विश्वास की नींव हिल गयी है।"

इसी वक्त देवी जी किसी काम से अन्दर चली गयीं। बस झट से समीप आकर रधिया बोली—

"एक उपाय और सोचा है लेकिन मलकिन न जानने पायें।" कान से सटकर चुपके से उसने कुछ बातें कहीं और तब तक देवी जी आती हुयी दिखायी पड़ीं लेकिन फिर कोई बच्चा रोने लगा था। इसलिये उल्टे पाँव उन्हें वहाँ से चला जाना पड़ा। तब मैंने रधिया से कहा—

"है तो अच्छी तरकीब लेकिन...."

"बड़े भाई, मेरा अपना मामला न होता तो मैं खुद इसी रास्ते को अख्तियार करती। लेकिन मेरा उतना असर न पड़ता। फिर भी इसी को अगर कोई प्रभावशाली व्यक्ति करे तो धरती डोल जाय और चौबीस घण्टे में ऊषा को भागते-भागते जान बचानी पड़े लेकिन...."

"छुरा की अपेक्षा यह रास्ता अच्छा है परन्तु कालिज की प्रतिष्ठा का प्रश्न सामने आ जाता है।"

"इज्जत आबरू को डरते रहियेगा तब कुछ नहीं हो सकेगा।"

"अपनी आबरू का सवाल नहीं है, समाज की आबरू की बात है।"

"लोहा लोहे से काटा जाता है; लकड़ी लकड़ी से। जहर से जहर की आग बुझायी जाती है। इज्जत बरबाद भी हो जाय लेकिन इज्जत लेने वाले के खिलाफ हाथ न उठाया जाय? क्या अजीब बात है?"

"यह तो महान कायरता है।"

"फिर क्यों प्रतिष्ठा पर इतना जोर देते हैं? संस्था की इज्जत इसमें है कि जिस उद्देश्य को लेकर वह कायम हुयी है, उसे पूरी करती चले और वह अपने उद्देश्यों से जहाँ गिरती हुयी दिखायी पड़े तो उसे राह रास्ते पर लाने के लिये पुराने लोग निकाल बाहर किये जाँय और नये तत्वों को शासन का अधिकार मिले। आखिर गन्दगी दूर करनी है जब पूरी-पूरी तब तो इसका ख्याल ही छोड़ देना पड़ेगा कि पूरी इमारत खड़ी रह जायगी या उसका कोई कमरा गिरवाना होगा या पूरी की पूरी इमारत गिराकर नये सिरे से नयी नींव पर नयी बिल्डिङ्ग बनानी होगी।"

"ठीक है, सोचूँगा। अब तुम जाओ। मेरे सर में दर्द हो रहा है।" कहकर मैं वहीं लेट रहा।

११

दस-पाँच हजार आदमियों का करीब-करीब अनुशासित मजमा सा भी चार-चार की कतार बनाकर आगे बढ़ा चला जा रहा था और उस भीड़ में से आकाश को गुंजरित कर देने वाले सम्मिलित कण्ठों से निकले नारों के सहारे जुलूस और उसका जोश बरबस ही सड़क पर चलने वालों का ध्यान अपनी ओर खींच रहा था। इससे भीड़ भी बराबर बढ़ती ही चली जा रही थी।

शहर की सूती मिल के मजदूरों के हड़ताल का आज आठवाँ दिन था। हर पार्टी के लोग—मजदूर अन्दोलन से सम्बन्धित जो थे वे ही—अपना-अपना झण्डा लगाये जुलूस में शामिल थे। आज किसी विशेष समस्या को लेकर विचार विमर्श के साथ-साथ जन-सम्वेदना प्राप्त करने के हेतु यह जुलूस निकला था, जो कि चन्द मिन्टों में सभा के रूप में परिणित हो जाने वाला था।

कुछ दूर जाकर मैं भी इनके साथ शामिल हो गया और काफी दूर तक इनके साथ चलता रहा। इनके नारे बड़े ही जानमारू थे। मजदूर और मिल मालिकों को लेकर, अपनी समस्याओं एवं समाधान को लेकर और अपनी माँगों को लेकर तो इनके नारे एक से एक पुरजोश, चुनिन्दे, तन के तार-तार को झकझोर डालने वाले और मार्के के थे लेकिन बीच-बीच में अपनी सरकार को भी जुलूस वाले कोसते जाते थे और इस आशय के भी कई नारे लगाये जा रहे थे। पूँजीवादी व्यवस्था और मौजूदा शासन दोनों के अलग-अलग नाम रख गये थे। 'मिल वालों को', 'सरकार को' ये दोनों शब्द

पहले थे उनके नारों में। लेकिन दोनों शब्द समूहों के गले में उन्होंने विशेषणों के गजरे पहना दिये थे। एक को, "खून के प्यासे" और दूसरे को, "सड़ी-गली" के विशेषणों से विभूषित किये थे। विशेषणों सहित विशेष्य वाले समूचे शब्द समूह का उच्चारण एक आदमी लाउड-स्पीकर पर करता तो जुलूस वाले सम्मिलित स्वरों में गगनभेदी आवाज में साथ-साथ बोल उठते—'एक धक्का और दो'। सिर दर्द तो कम हो गया था लेकिन उस भीड़ में—'एक धक्का और दो' वाले नारे को मन ही मन गुनगुनाता मैं एक किनारे धीरे से खिसक कर खड़ा हो गया। भीड़ का ताँता खत्म हुआ और मैंने एक रिक्शा पकड़ा और जा पहुँचा सीधे वकील साहब के यहाँ।

बस, 'एक धक्का और दो—' यही रटता हुआ जैसे लोग राम नाम जपते हैं, मैं भी उनके चैम्बर में न जाकर ऊमा भाभी के कमरे में जा पहुँचा। खन्ना जी भी संयोग से वहीं थे। वह मुझे लेकर प्राइवेट कमरे की ओर चल देने को उठ ही खड़े हो रहे थे कि मैंने कहा—

"जी नहीं, आज हमारी आपकी बात चौड़े में होगी। भाभी, आप भी रहिये, सिर्फ सुनती जाइये।"

"कोई बात नहीं। यहीं होगी।" कहकर खन्ना जी आराम से बैठ गये पलङ्ग पर। तत्पश्चात् भाभी ने कहा—

"व्यर्थ में मुझे क्यों इस झगड़े में डालते हैं?"

"कुछ नहीं। आपको बैठना पड़ेगा। अच्छा, बड़े भाई बताइये, समस्या का कोई समाधान प्राप्त किया आपने?"

"भई, बात जब बुरी तौर पर कहीं आकर फँस जाती है तो बड़ी ही फजीहत में पड़ जाता है आदमी। ऊषा अलग तनी हैं, तुम अलग तने हो।"

"खूब तो कहा आपने। कोई व्यक्तिगत मामला है मेरा या उनका ?"

"तुम्हारा न हो लेकिन उनकी रोजी का सवाल है।"

"उन्हें रोजी तलाशनी नहीं पड़ेगी। रोजी खुद उन्हें ढूँढ़ कर नियुक्ति पत्र उनके घर पहुँचा देगी। विदुषी हैं, अनुभवी हैं। नारी के सामने नौकरी प्राप्त करने की समस्या नहीं है, वह तो इन्हें मिल ही जाती है। असल में नौकरी करके उसे निभाने की समस्या नारी के लिये अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका कमी किस बात की ? उन्हें रोजी की फिकर करनी है, इसलिये वह त्याग पत्र देने में असमर्थ हैं, मगर यह सब महज बहाने बाजी है।"

"तुम जिद्दी हो। अपने आगे किसी की सुनोगे थोड़े ही।"

"बेशक ! अगर मेरी जिद की बुनियाद गलत हो तो एक बच्चा भी कान पकड़ कर सही-सही बातें बताये, मैं मान लेने को तैयार हूँ लेकिन अगर मैं सही हूँ, न्याय की प्रबल नींव पर खड़ी हैं मेरी माँगे तो उसे जिद कहकर लोग अपना जी भले ही भर लें मगर मेरी ऐसी जिद नहीं, जो बिना अपने निशाने तक पहुँचे, बाकी रहे।"

"देखो, यह बातचीत और समझौतों का ज़माना है।"

'लेकिन उसका 'स्टेज' अब नहीं रहा। यहाँ तो आज कौल कर चुका हूँ कि या तो न्याय प्राप्त करूँगा और नहीं तो अपने इस हाड़ माँस के बने शरीर की धज्जी-धज्जी उड़ जाने दूँगा। बोलिये। देखिये भाभी। मेरी जरा भी गलती नहीं।"

भाभी मौन बनी रहीं। बड़े भाई ही बोले—

"शान्ति से सारी बातें सोचो। इस तरह 'बैलेन्स' खो देने से काम थोड़े ही बनेगा।"

"इसका तो नतीजा आप कल सुबह देखेंगे।"

वह हँसते हुये बोले—

"देखना, बड़ा भाई हूँ, पुराना दोस्त हूँ। कोई आफत न खड़ी कर देना। मैं तुम्हें देख चुका हूँ। भयानक जीव हो।"

"आपका अनुमान गलत नहीं। सुन लीजिये मेरा निश्चय।" मैं चुप हो गया क्षण मात्र को। खन्ना के चेहरे पर हवाई उड़ रही थी। इतना मार्क करके फिर बोला—

"कल सुबह से कालेज की पथभ्रष्टा प्रिन्सिपल के न निकाले जाने के विरोध में मैं आमरण अनशन प्रारम्भ करने जा रहा हूँ। कान खोल कर सुन लीजिये।" मैं पुनः चुप हो रहा। कमरे में सन्नाटा छा गया। मैंने पुनः कहा—

"बड़े भाई। कहिये अब क्या कहते हैं?"

"........"

"कुछ बोलिये भी..."

जैसे बड़े भाई की जबान तालू से जाकर ऐसी सट गयी थी कि उनके मुँह से 'बेकार' ही नहीं फूट रहा था। मेरी बात सुनकर सन्न हो गये। चुप रहकर अपनी निगाहों को मैंने उनके चेहरे पर चौकड़ी भरने की छूट दे दी थी। कुछ क्षण चुप रह कर वह बोले---

"मैं अपना इस्तीफा तो अभी लिखकर भेज ही देता हूँ। ऊपा जानें और उनका काम। तुम जिद्दी ठहरे। ऐसे वैसे तो हो नहीं। 'भूँके तो काटे' वाली बात तुम्हारे साथ सोलह आने सच है।"

"वाह! तब तो मुझे बहुत ही बड़ा बल मिल जायगा। इतना सहयोग तो सफलता को ले जाकर मेरे कदमों पर झुका देगी।"

"लेकिन मैं तुम्हारी धमकी में आने वाला नहीं। तुम किसी की आबरू पर कीचड़ उछाल कर लीडर बनना चाहते हो। मैं तुम्हारा डटकर मुकाबिला करूँगा।"

"तब क्यों अभी से मैदान छोड़कर भाग जाने की बातें करने लगे? देखिये, ढुलमुल यकीनी छोड़कर एक रास्ता पकड़ना होगा। मेरा सही

रास्ता हो, मुझे सहयोग दें। ऊषा का रास्ता सही हो, उन्हें सहयोग दें मगर इधर-उधर, क्षण में कुछ, क्षण में कुछ, यह छोड़ दीजिये। देहातों में एक कहावत प्रचलित है—"पड़वा के पालागी" और "पड़िया के भी पालागी।" 'हँसब, ठठाईं फुलाउब गाली' दोनों असम्भव हैं साथ-साथ।"

"मुझे तुम्हारे नसीहत की दरकार नहीं।"

"लेकिन मुझे है। कल मैं यज्ञ की आहुति बनने जा रहा हूँ। इस अवसर पर आप ही, जो कुछ चन्द बातें, बता सकें तो बड़ा एहसान मानूँगा।"

"अब मुझे चिढ़ाने पर उतर आये। क्यों परीशान कर रहे हो? अरे! उसे समझा-बुझाकर महीने आध महीने में मैं यहाँ से 'धता बासठ' करूँगा लेकिन तुमको तो यह है कि बस आज और अभी।"

"जरूर और इतना ही नहीं। चौबीस या अढ़तालिस घन्टे में आप उन्हें शहर से बाहर देखेंगे।"

"जब मरने-मारने पर उतारू हो गये हो तो क्या नहीं कर सकते।"

"लेकिन इतना जानकर भी आपके कान पर जूँ नहीं रेंग रहे हैं।"

"लो, फिर वहीं जाता हूँ। एक बार फिर उन्हें समझाता हूँ।"

"हाँ, वह नारा नहीं सुना आपने?"

"कौन सा?"

"वही—"एक धक्का और दो।" इस बार जरा करारा धक्का रहे।" कहकर मैं गम्भीर होकर नीचे ताकने लगा। भाभी ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया और बड़े भाई शायद मुस्कराते हुये बोले—

"क्यों नाहक सता रहे हो?"

"फिर वही बात....आप तो जा रहे थे न।" मैं गम्भीर ही बना रहा।

"हाँ हाँ...." कहकर भाई साहब तुरन्त उठे और वहाँ जाने के लिये कमरे से बाहर हो रहे।

भाभी का संकेत पाकर मैं बैठा रह गया। चाय की सख्त जरूरत महसूस कर रहा था और चाय तुरन्त सामने आ भी गयी। पीते ही पीते मैंने भाभी से कहा—

"देखो, नाराज न होना। भैया से मेरी कोई अदावत नहीं है।"

"वाह ! इसमें कौन-सी बात ही रक्खी है।"

"भाभी ! एक बार फिर से ज्योतिषी बनकर बता जाओ कि क्या बड़े भैया ऊषा से इस्तीफा हासिल करके आयेंगे या खाली हाथ।"

"बिलकुल 'बैरङ्ग'।"

"सचमुच।"

"मैं खूब समझती हूँ इन्हें। ऊषा इनके जैसे सैकड़ों को अपनी अँगुलियों पर नचाती फिरे। इनसे कुछ भी किये दिये होगा नहीं।"

"वही मेरा भी ख्याल है। फिर सुन लो। कल से मेरा अनशन निश्चित है। इन्च भर भी पीछे नहीं हटूँगा। तुम्हारी शुभ कामना मुझे मिलनी चाहिये।"

"मेरी ही नहीं, सारी जनता की शुभ कामना तुम्हें प्राप्त होगी। आज नहीं तो कल जो भी सुनेगा, वही तुम्हारे प्रति सहानुभूति प्रकट करेगा और इन लोगों को थूकेगा।"

"अच्छा अब मैं चला क्योंकि रात भर कई घन्टे तक बहुत से जरूरी काम करने होंगे। कोई नहीं जानता कि ऐसे संघर्ष में सैनिक का क्या हाल होगा, क्या नहीं। यही एक जीत की लड़ाई ही होती है। मर जाऊँगा तो स्वर्ग में सीट सुरक्षित मिलेगी और जिन्दा रहा तब तो इसके यही मानी होंगे कि मैं जिस उद्देश्य के लिये लड़ रहा था, वह सफल रहा।" कहकर उठा, अभिवादन किया और बाहर निकल आया लेकिन दरवाजे से थोड़ी दूर पर खड़ा दिखायी पड़ा मुझे अविनाश। उसे पुकारा।

उसके कन्धे पर हाथ रखे हुये थोड़ी दूर तक मैं साथ गया। खैर

वह अपने घर यह कहने चला गया कि शायद देर होगी; इसलिये रात को न आ सकूँगा ; अमुक दोस्त के यहाँ रह जाऊँगा। मैं घर की ओर चल पड़ा।

मेरे मकान में घुसते ही बरामदे के बगल में एक ऐसा कमरा है, जिसे मेरा 'स्टडी रूम' भी लोग कहते हैं। तीन चार चारपाई की जगह है उसमें। यों मेरे सोने वाला कमरा यह नहीं है लेकिन जब किसी दोस्त, मेहमान के आ जाने पर मुझे सोना ही पड़ा तो उसके लिये यही जगह है या कभी रात भर लिखते ही या पढ़ते ही रहने की झक्क सवार हुयी तब मैं इसी कमरे को इस्तेमाल करता हूँ। इस कमरे में दो चारपाईयों पर बिस्तर बिछाने का मेरा आदेश सुनकर मेरी देवीजी समझ गयीं कि आज कुछ विशेष आयोजन है। बोलीं—

"क्या बात है?"

"कुछ नहीं, अविनाश भी यहीं रहेगा। कुछ जरूरी बातें उसे नोट करानी हैं। इसमें चार-पाँच घन्टे भी लग सकते हैं। इसलिये यहीं हम दोनों सो रहेंगे।"

"मालूम है मुझे आप का जरूरी काम।"

"अच्छा बताओ तो सही।"

"अगर सही सही बता दिया तो मुझे क्या मिलेगा?"

"शाबाशी। पीठ ठोंक दूँगा।"

"तब रहने दीजिये।"

"फिर क्या चाहिये?"

"आप देंगे नहीं?"

"सुनूँ तो पहले तुम्हारी फरमाइश।"

"न देंगे तो क्या? लेकिन बता तो दूँ।"

"अरे! इसमें कौन सी बड़ी बात ही है। फिर तुम्हारे लिये?"

"लगे चिकनी चुपड़ी बातें करने।" कहकर जरा मुँह लटका लिया।

उनके कन्धे पर मीठा-सा धौल जमाते हुये मैंने उनकी ठुड्डी हिला-कर पूछा—

"क्यों खफा हो ?"

"पूछते हैं ?"

"बताओ न सही, बात क्या है ?"

"मुझे आप पर अधिकार ही नहीं तो क्या बताऊँ ?"

"दसो अँगुलियाँ और दोनों हाथ जोड़े खड़ा हूँ, क्या गलती हुयी सरकार ?"

"मुझसे पूछते नहीं तो मुझे कुछ बता तो सकते ही थे।"

"हुआ क्या ?"

"यही कि आपके इरादे में संशोधन उपस्थित करने का मुझे पूरा पूरा हक है। बोलिये है कि नहीं ?"

अब मेरे कान खड़े हो गये। रधिया ने जरूर कुछ इनसे बता दिया है। बोला—

"कोई खास इरादा नहीं है।"

"वाह ! आपने समझा जैसे मुझे मालूम ही न हो सकेगा। बस, मालूम हो गया रहने दीजिये। नारी का अध्ययन आपका अभी बिल-कुल ही अधकच्चरा है।"

"बस, पहेली ही बुझाती चली जाओगी।"

"पेट में नौ महीने तक बच्चे को लादे फिरती हूँ लेकिन रत्ती से भी कम वजन की मामूली से मामूली बात भी हम लोगों के पेट में नहीं पच सकती। इतना जान रखिये। कहिये, यह बात सच है या झूठ ?"

मैं चुप होकर सोचने लगा, जरूर रधिया ने ही कहा होगा।

"क्या रधिया तुमसे कुछ कहती थी ?"

"यह क्या कीजियेगा लेकर कि किसने कहा, किसने नहीं लेकिन मुझसे आपने छिपायी बात या नहीं ?"

"अवश्य।"

"आखिर ऐसा क्यों किया गया? क्या मुझे इतना कमजोर समझा जाता है? नरक के कीड़े को आखिर और क्या कोई समझ ही सकता है?"

"गलती हुयी, माफी दो। बातें सब जानती ही हो। लेकिन मैं एक बात तुमसे पूछना चाहता हूँ।"

"जी पूछिये।"

"तुम तो प्रेरणा हो न? तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है? रात बीतेगी और कल सुबह मैं युद्ध स्थल में सङ्घर्ष रत हूँगा। इस समय तुम्हें मुझे बल देना चाहिये, उत्साह देना चाहिये या उलाहना?"

"इतनी गल्ती जरूर हुयी। इसके लिये अब आप मुझे माफी दें। जाइये, शौक से जाइये, आपका उद्देश्य पूरा हो, आपकी विजय हो लेकिन मुझे भी साथ ले चलने में आपको क्या आपत्ति है?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं लेकिन गिरस्ती की गाड़ी की ड्राइवर और गार्ड तुम्हीं हो। घर के भीतरी कामों की तरफ से मैं निश्चिन्त इसलिये रहता हूँ कि यहाँ तुम हो उसे योग्यतापूर्वक सञ्चालित करने के लिये। और तुम भी चली चलोगी तो अपने आश्रितों का क्या होगा?"

"कोई बात नहीं। जाइये, खुशी से जाइये। ऊषा जैसी औरत सौ बार जन्मे और मरे लेकिन मेरा सुहाग अमर है, उसे वह नहीं लूट सकती।" इतना कहकर वह सोने वाले कमरे की व्यवस्था में लग रहीं।

साढ़े नौ बज ही रहे थे कि तब तक अविनाश आ उपस्थित हुआ।

आमने-सामने हम दोनों बैठकर बातें करने लगे। मैंने कहा—

"दया को दो दिन से नहीं देखा।"

"जी, मिली थी। उसे सारी बातें बता दी हैं।"

"लेकिन देखो, कोई विशेष कार्य जब करना हो तो उसे पूरा करके ही किसी को बताना चाहिये। अब जैसे अनशन वाली बात ही ले लो। यकायक अनशन प्रारम्भ करने का समाचार जब शहर में दोपहर तक लोगों को मालूम होगा तो लोगों को बहुत आश्चर्य होगा। मेरी खन्ना की दोस्ती सभी को मालूम है। इसलिये थोड़ा और ताज्जुब होगा। हाँ, घर कह दिया न कि रात में नहीं आओगे।"

"जी हाँ।"

"देखो, तुम्हें भी कई रोज से मेरे साथ परीशान होना पड़ रहा है। युनिवर्सिटी भी नहीं जा सके। पढ़ाई-लिखाई...."

"कोई वैसी बात नहीं। अगर रुकना ही पड़ा यहाँ मुझे ज्यादा दिन, और अब तो बेशक रुकना ही पड़ेगा, चाहे साल ही खराब हो जाय, तो भी परवा नहीं। आपने जब अपने प्राणों की बाजी लगा दी है तो क्या मैं इतना भी नहीं कर सकता? फिर आवश्यकता पड़ी तो और भी, जो कुछ भी, चाहे उसका जो भी परिणाम हो, करूँगा ही। यही जरा इन दिनों मैं युनिवर्सिटी-स्टूडेन्ट्स यूनियन का प्रेसिडेन्ट हूँ। वहाँ से आज ही खत आया है। एक जरूरी मीटिङ्ग है परसों। खैर, कल-परसों तार दे दूँगा कि नहीं आ सकता लेकिन किसी न किसी दिन किसी भी समय, रात-बिरात, वहाँ जाकर वाईस प्रेसिडेन्ट को कागज-पत्तर सम्भला आना होगा। फिर इस अनशन के प्रचार के सिलसिले में भी जाना होगा दो-तीन रोज में इलाहाबाद। विद्यार्थियों की इतनी बड़ी भीड़ उलट पड़ेगी आपके साथ सहानुभूति प्रकट करने कि देखने वालों की आँखें चौंधिया जायँगी।"

"अविनाश...." मेरी आँखें प्रसन्नता से भर आयीं—"तुम्हारे कारण मुझे बड़ी ताकत मिल रही है। अच्छा, यह तै ही है कि कल से मुझे आमरण अनशन करना है। कालिज भवन के सामने वाले

पटरी पर ही वहीं कहीं आसन जमा दूँगा। यही कोई दस बजे तक। लेकिन तब तक यह बात किसी को न मालूम हो सके। दया को कल सुबह जाकर तुम कह आना। अब इस अनशन का प्रचार बहुत माकूल ढङ्ग से होना चाहिये। कोई भी सम्वाददाता, संस्था, उसके पदाधिकारी, शासन के अधिकारी, प्रान्तीय शासनाधिकारी, यहाँ आने वाले हर दैनिक पत्र, प्रत्येक स्थानीय सार्वजनिक संस्थायें, राजनीतिक, सामाजिक सभी, एम० एल० ए०, एम० पी०, स्कूल कालिज गर्ज कि स्थानीय नागरिक जीवन का कोना-कोना इससे परिचित हो जाय, इसके कारण से परिचित हो जाय। फिर शहर से बाहर की दुनियाँ कम से कम प्रान्तीय पैमाने तक तो हलचल मचा ही देना।"

"प्रोपेगैण्डा का पेट भारी होता है। इसको भर पेट खिला दूँगा। जनमत का प्रबल समर्थन आपको प्राप्त होगा। आपके लिये प्रस्ताव पास होंगे, सभायें होंगी, जुलूस निकलेगा, आन्दोलन होगा, हलचल मचा के रख दूँगा। चौबीस घण्टे में अधिकारी औड़ी बोल देंगे और मिसेज शर्मा तो शहर छोड़कर ऐसा फुर्र से उड़ जायँगी कि कानोंकान उनकी विदाई का किसी को पता न लगेगा। यह है जरूर कि कुछ पैसों की जरूरत पड़ेगी।"

"हाँ, हाँ, ये पाँच सौ रुपये ले लो।"

"रखे रहिये। कल सुबह ले लूँगा।"

"और कुछ स्वयं सेवक...."

"लिस्ट बना चुका हूँ। पचीसों से कह चुका हूँ। वायदा ले चुका हूँ लेकिन उन्हें न वक्त बताया है और न मुकाम। छात्रों की तो भीड़ लगी रहेगी। फिर दोपहर तक वहाँ आपके लिये कैम्प तैयार हो जायगा। और चौबीस घण्टे एक खासी भीड़ आपकी स्वास्थ्य सुरक्षा की जानकारी हासिल करने के लिये उस कैम्प को घेरे रहेगी। एक आदमी स्वास्थ्य सम्बन्धी पूछताछ का जवाब देने के लिये वहाँ रहेगा।

ब्योरे की सारी बातें दया हम तथा और हमारे सभी साथी मिलकर तै कर लेंगे। बस आप आराम से सो जाइये।"

"अच्छी बात है। जरा अभी आता हूँ।" कहकर अपनी देवी जी के पास हाजिर हुआ और उनसे कहा—

"देखो! कल सुबह साढ़े सात बजे मैं पहले खन्ना जी के यहाँ जाऊँगा। अभी रात को वह ऊषा के यहाँ गये हैं। इसलिये जब तक तुम मेरे अनशन के समाचार को रधिया की ज़बानी दस बजे के बाद स्वयं सुन न लेना तब तक इसकी चर्चा किसी से न करना।"

"अच्छी बात है। हाँ, दूध तो पीते जाइये।"

"क्या इतना ही है? अविनाश...."

"अब क्या ऐसा समझ लिया है आपने मुझे....यह देखिये, उसके लिये गिलास में अलग दूध रक्खा है।"

"फिर दे ही दो, वहीं हम दोनों पी लेंगे।"

"हाँ, हाँ।"

"लाओ दे दो।" दोनों गिलास दूध लेकर कमरे में वापिस आया।

दूध पीकर हम दोनों मामूली बातें करते-करते सो गये।

१२

मेनका से आपकी मुलाकात हो चुकी है लेकिन इस नाम से आप उसे नहीं जानते होंगे। मेरी पत्नी है न वह। मेनका उसका प्यार का नाम है। उसका यह नाम मैंने कभी छोड़ रक्खा था और तबसे मैं उसे इसी नाम से पुकारता हूँ।

आज दिन जरूर 'नाम बड़ेरा दर्शन थोड़ा' वाली बात सच है उसके साथ लेकिन कभी उसका भी ज़माना था। और जब उसका ज़माना था, उसकी जवानी थी तो शौकीनों के मुँह में, सच मानिये, पानी भर आता था उसे देखकर। मगर यह कहिये कि वह किसी को लिफ्ट देती रही हो, तो मैं मान नहीं सकता। अपने मादक यौवन, तड़पते सौन्दर्य आदि की तारीफ भले ही प्रेम से सुन लेती रही हो लेकिन क्या मज़ाल कि कोई उसकी आँखों में अपनी आँखें डालदे। तब वह सचमुच मेनका थी लेकिन तब तन से केवल और अब मनसे विशेष रूप में।

एक बात और! इसकी मिट्टी गज़ब की है। अब भी चेहरे पर इसके काफी पानी है। मेरे कन्धे तक इसकी लम्बाई पहुँचती है। गोल मटोल बदन पाया है इसने और काफी तन्दुरुस्त है लेकिन बेचारी एक चीज़ से तबाह हो गयी और वह है ज्यादा बच्चा पैदा होने से जिसके हम दोनों बराबर-बराबर दोषी हैं।

दूसरे दिन सुबह-सुबह जाते वक्त उसने ही मेरे चरणों का स्पर्श किया। मैंने उसे गले से लगा लिया और कहा—रधिया से सारी बातें समझा देना।"

अविनाश के साथ ज्योंही घर से बाहर पैर निकाला ही था कि सामने आते दिखायी पड़े खन्ना जी। बोला—

"बड़े भाई! क्यों कष्ट किया? मैं आ ही रहा था। अच्छा, अविनाश तुम आठ साढ़े आठ तक वहीं चले आना। जाओ।"

अविनाश चला गया और मैं खन्ना जी के रिक्शे पर सवार होकर उनके घर की ओर चल पड़ा। वह बोले—

"क्या सोचा?"

"मुझ से पूछते हैं? खैर, चलिये घर पर बातें होंगी।"

"अच्छी बात है।" कहकर चुप हो रहे लेकिन उनके चेहरे से घबड़ाहट स्पष्ट थी।

कमरे में पहुँचते ही भाभी चाय नाश्ते का आयोजन करने को उठी ही थीं कि मैंने उन्हें वैसा करने को मनाकर दिया और बोला—

"भाभी, बहुत जरूरी बातें करनी हैं, इसलिये छोड़ो यह सब टंटा-बखेड़ा।" फिर खन्ना जी की ओर मुखातिब होकर मैंने कहा—

"हाँ, बड़े भाई, बोलो, रात को कल क्या कर आये?"

"मैंने उन्हें बहुत-बहुत तरह से समझाया। साफ-साफ कह दिया कि वह ऐसा वैसा मामूली आदमी नहीं, महाजिद्दी है। मानेगा नहीं; आपको इस्तीफा देना ही पड़ेगा लेकिन सिर हिलाकर ना कहने को छोड़कर कोई बात नहीं।"

"खुशी-खुशी वह इस्तीफा नहीं देना चाहती?"

"सुनो भी। जानते हो, सारी बातें बहुत ही चुपचाप चल रही हैं और यकायक अगर वह इस्तीफा देकर चली जायँगी तो सर्वसाधारण में अनेक प्रकार की अटकल बाजियाँ लगायी जाने लगेंगी। कालिज की प्रतिष्ठा को लेकर तरह-तरहकी भ्रमोत्पादक अफवाहें उड़ने लगेंगी।"

"लेकिन यह उस वक्त सोचना चाहिये जब ऊषा इस बात पर तैयार हो जाँय कि मैं कालेज से पृथक होने को तत्पर हूँ।"

"हाँ, यह तो बात है ही····लेकिन अब किया क्या जाय?"

"आप इसकी फिकर छोड़ दीजिये।····अविनाश आ गये तुम अच्छा बैठो।" इतना कहकर मैं अविनाश को सारा प्रोग्राम समझाते हुये बोला—

"देखो! मेरे जितने भी मित्र साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों के हैं, उन्हें तार से खबर दे देना। कलकत्ता, पटना, प्रयाग, लखनऊ, काशी, कानपुर, आगरा, मेरठ, दिल्ली हर जगह का पता तुम्हें नोट करा ही दिया है। कुछ केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकार के मन्त्री भी हैं।

एकाध दर्जन एम० पी० और तीन चार दर्जन एम० एल० ए० लोगों की भी लिस्ट है न तुम्हारे पास, जो कल रात मैंने तुम्हारे हवाले सिपुर्द की थी।"

"जी हाँ।"

"वे सभी अपने परिचित, मिलने-जुलने वाले हैं। पैसों की परवा न करना। ब्योरेवार सारा समाचार भेजना। इधर मैं आसन मार कर बैठूँ और उधर तुम तुरन्त अपने सहायकों के साथ तार चिट्ठी का काम तेजी से करने लग जाना और इसके बाद लाउड स्पीकर लेकर शहर के कोने-कोने में उन लोगों को भेजकर मेरे अनशन का समाचार प्रसारित करा देना। और आज स्थानीय नेताओं से तुम्हें मिलने की जरूरत नहीं। यह काम कल से शुरु करना क्यों कि तब तक लोगों में सारी बातें जानने की उत्सुकता की भावना प्रबल रूपसे जाग चुकी रहेगी।"

"आप निश्चिन्त होकर अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये अपना आन्तरिक बल संग्रह कीजिये। ईंट से ईंट बजा दूँगा। ज़रा आप शुरू तो कीजिये। हम लोग नयी पीढ़ी के हैं। हमारा खून सर्द नहीं हुआ है। नया खून है। आफत के परकाले हैं। हाँ, भाई साहब ने तो मैनेजरी से इस्तीफा दे ही दिया होगा। क्योंकि जरा इन्हीं का संकोच-लिहाज रह जाता था और अब क्या है, बेमुरव्वत होकर काम करने का मौका मिलेगा।"

इतना सुनना था कि चुपके से हाथ पकड़ कर अविनाश को लिये दिये खन्ना जी अपने प्राइवेट कमरे में चले गये लेकिन जरा भी आशंका की बात नहीं मेरे वास्ते। अविनाश को क्या खाकर यह फोड़ सकेंगे? इसका मुझे पूरा-पूरा भरोसा है। अविनाश उन नौजवानों में नहीं, जो स्वार्थ के पीछे इन्सानियत के मुँह में कालिख पोत देते हैं। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि उससे कोई मशविरा

करते हों समस्या सुलझाने की ही। मैं इतना सब सोच ही रहा था कि तुरन्त दो ही मिनट में दोनों वापिस आ गये। और खन्ना जी बोले—

"हाँ भाई, तुम मानोगे नहीं।"

"क्या वही बातें फिर-फिर करते हैं।"

"कोई ऐसा रास्ता ही बताओ कि तुम्हें अनशन भी न करना पड़े, लोगों को कुछ मालूम भी न हो सके और ऊषा कालेज से पृथक भी हो जाँय और हमेशा के लिये। यह भी न हो कि वह कालेज के विरुद्ध मुकदमेबाजी ही शुरू कर दें।"

"देखिये, लाख रास्ते हैं लेकिन उसके लिये जो उन पर चलना चाहे। अभी यही नहीं साफ हुआ कि आपकी दिली मंशा क्या है?"

"मेरी क्या दिली मंशा है और क्या नहीं, इसकी बात ही छोड़ दो। सवाल इस वक्त यही है कि तुम्हारी ख्वाहिश कैसे पूरी हो। हाँ, इतना विश्वास करो कि मैं हृदय से चाहता हूँ कि तुम्हारी टेक रह जाय। और बात भी बढ़ने न पाये। अभी तक थोड़े से ही लोगों तक ये बातें सीमित हैं लेकिन आगे तो तिल का ताड़ हो जायगा।"

"आप को मैं बड़े भाई की तरह बराबर से मानता चला आ रहा हूँ लेकिन आपके बँटे हुये विचारों को देखकर मुझे यकीन नहीं होता कि जो कुछ आप अभी कह गये हैं, उन पर आप चल भी सकेंगे। इसलिये इस सम्बन्ध में भाभी से बढ़कर और कौन शख्स हो सकता है जो मुझे इस मामले में यकीन दिला सके। क्यों भाभी?"

"मुझे श्रोता ही बने रहने दें। क्यों घसीटते हैं?"

"हाँ, हाँ, गोपू की माँ से ही पूछ लो।" बड़े तपाक से खन्नाजी बोले।

"क्यों भाभी, सुन रही हो? बड़े भाई क्या सचमुच मेरे साथ सहयोग करना चाहते हैं? क्या इनकी बातों पर विश्वास किया जा सकता है?"

"मैं कब कहूँगी कि वह झूठ बोल रहे हैं। मेरे तो...."

"न, न, यह बात नहीं। तुम इनके रग-रेशे से जितनी परिचित हो, शायद ही दूसरा कोई हो, इसलिये मैं...."

"वह अवश्य तुम्हारी मदद करना चाहते हैं। इसमें रत्ती भर भी फरक न समझना।"

"ठीक है। कोई ऐसा रास्ता ही निकालो कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

"यह आप लोग स्वयं परस्पर विचार कर सकते हैं। इतने बड़े विद्वान लोग हैं।" कहकर वह चुप हो गयीं।

"बोलो, बड़े भाई।"

"मेरी अकल काम नहीं कर रही है।"

"यहाँ कौन मेरी ही अकल ठिकाने है। मेरे सामने केवल एक ही चीज दिखायी दे रही है और वह है आमरण अनशन। भाभी, तुम्हीं कोई रास्ता बताओ।"

भाभी कुछ कहना ही चाहती थीं कि खन्ना जी ही बीच में बोल उठे—

"अनुभव की बात बता रहा हूँ। असाध्य रोगी को बड़े से बड़े वैद्य, डाक्टर, हकीम अच्छा करने में असफल हो जाते हैं लेकिन कोई बहुत मामूली चिकित्सक ही अपनी दो पैसे की दवा से उसीको अच्छा चङ्गा कर देता है।"

भाभी ने तुरन्त उत्तर देते हुये कहा—

"लेकिन दो पैसे की दवा में वह ताकत नहीं रहती जिससे रोगी अच्छा हो जाता है। 'विश्वासं फलदायकम्' रोगी और उसके शुभेच्छुओं का जो अटूट विश्वास उस चिकित्सक पर रहता है उससे उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि वह रोगी को अच्छा ही करके छोड़ता है।"

मैंने कहा—

"मुझे विश्वास है कि तुम कोई रास्ता निकालोगी। क्यों बड़े भाई ?"

"मुझे भी।"

क्षण भर सन्नाटा रहा और दूसरे क्षण मुस्काती हुयी भाभी ने कहा—

"नुस्खा तो बहुत ही मामूली है। बस दो पैसे का। लेकिन जब वह राजी हो सकें।"

"खैर, वह बड़े भाई का काम है। वह जैसे भी होगा, पूरा करेंगे।"

"अच्छा, तो सुनिये। ऊषा शर्मा आज ही एक महीने की छुट्टी की दरख्वास्त देकर मैनेजर साहब से उसकी मंजूरी प्राप्त कर लें। दोपहर में अपना चार्ज वाइस प्रिन्सिपल को दे दें और शाम को हम सभी उन्हें स्टेशन तक छोड़ आवें तथा इस तथ्य का जोरों से प्रचार करा दिया जाय कि उनके पेट में फोड़ा गया है। उसी के इलाज के वास्ते वह बाहर गयीं हैं। क्यों कैसा होगा ?"

"वाह भाभी! बहुत सुन्दर व शिष्ट ढङ्ग बताया। क्यों बड़े भाई ?"

"जँच तो मुझे भी रहा है और मैं भी कुछ इसी लाइन पर अभी सोच ही रहा था ?"

"जरूर सोचते रहे होंगे। पति-पत्नी के केवल दो शरीर ही होते हैं। वैसे वे दो नहीं, एक ही हैं। जैसे अन्तरमन और बाह्य मन होता है न। बात तो आयी आपके अन्तरमन में लेकिन भाभी के बाह्य मन के सतह पर वह तैरती हुयी दिखायी पड़ी क्योंकि आप दोनों एक ही हैं न।"

"ठीक है, यही होगा और देखता हूँ कि ऊषा कैसे नहीं मानती। जरा सुनो तो।" कहकर मुझे अपने प्राइवेट कमरे में ले गये और बोले—

"जा रहा हूँ। देखो, मान गयी तो कितना अच्छा होगा। वह

भी कम जिद्दी नहीं है लेकिन उसे मानना ही पड़ेगा। सीधे मानेगी तो ठीक नहीं तो टेढ़े ही सही। यह देखो...." सदरी की जेब से 'लो डेड रिवाल्वर' निकाला और पुनः कहने लगे—

"उसकी सारी शैतानी दूर कर दूँगा।"

मैं अवाक रह गया। मामला बनते-बनते बिगड़ रहा है। कौन जाने, चला ही दें तो दूसरा ही उपद्रव खड़ा हो जायगा। मैंने कहा—

"लेकिन यह अच्छी बात नहीं। इसी के जोर पर चले हैं आप ऊषा को निकालने। रहने दीजिये, कोई जरूरत नहीं, बैठिये आप।"

"काँटा काँटे से ही निकाला जाता है।"

"किन्तु एक बुराई को दूसरी बुराई से नहीं।"

"अच्छा लो," कहकर उन्होंने रिवाल्वर के चैम्बर से गोलियाँ निकाल कर मुझे दे दिया और कहा—

"कहो तो इसे भी न ले जाऊँ। अब कोई डर नहीं है न? साथ में इसे लेता ही जाऊँ तो क्या हर्ज है? साम दाम दण्ड भेद हर तरह से समझा-बुझाकर अपना काम निकालना है।"

"खैर, इसके लिये मैं नहीं मना करता लेकिन क्या छूछी रिवाल्वर दिखाकर छुट्टी की दरख्वास्त उनसे जबरदस्ती लिखवायेंगे।"

"मुझे अब अपने ढङ्ग से काम करने दो।" कहकर वह कमरे से सीधे निकले और चले गये। मैं भी भाभी के कमरे में वापस आ गया।

तब तक दया भी वहाँ आ चुकी थी। तीनों—क्षमा, दया, अविनाश—उत्सुकता से मेरा मुँह ताक रहे थे। मेरे बैठते ही भाभी बोलीं—

"दया के जीजा गये?"

"हाँ गये जरूर लेकिन बड़े भैया भी बड़े विचित्र हैं। मैं न रोकता तो कितना बड़ा अनर्थ करने पर तुल गये थे?"

इतना सुनते ही भाभी को जैसे झटका-सा लगा। हड़बड़ाकर बोलीं—

"क्या रिवाल्वर भी लेते गये हैं ?"

"ले गये हैं जरूर लेकिन...."

"तब तो गजब हो गया।" कहकर भाभी सर थाम कर बैठ गयीं और गम्भीर होकर कुछ सोचने लगीं। सन्नाटा छा गया। किन्तु तुरन्त ही वह यकायक बोल उठीं—

"यह ऊषा, देखती हूँ, मेरा सत्यानाश करने के लिये हाथ धोकर पीछे पड़ गयी है।"

भाभी को व्याकुल देखकर मैंने कहा—

"घबड़ाओ नहीं। मैंने गोलियाँ निकाल ली हैं।" मैंने उनके सामने रिवाल्वर की गोलियाँ रख दीं।

भाभी ने उन्हें गिना और तुरन्त बोली—

"और बाकी कहाँ हैं ?"

"जितनी भरी थीं, उतनी उन्होंने चैम्बर से निकाल कर दे दिया।"

"देखिये, चरका दे दिया न तुम्हें। अभी कई गोलियाँ उनकी सदरी के भीतरी जेब में होंगी। मेरे सामने ही सुबह कुछ गोलियाँ चैम्बर में भरी गयीं और कुछ जेब में डाल लिया।"

"तब....तब....अच्छा, अविनाश यह पुर्जा लो।" कहकर मैंने खन्नाजी को लिखा कि आप अपने साथ अविनाश को बराबर रखे रहें। और इस पुर्जे को लेकर अविनाश को तुरन्त रवाना किया लेकिन दया भी उसके पीछे-पीछे जाने के लिये जिद करने लगी। खैर, उसे डाटकर रोका गया। और तब जाकर हमलोगों की जान में जान आयी। मैंने कहा—

"भाभी, अब घबड़ाने की कोई बात नहीं।"

"सकुशल लौट आवें तब तसल्ली हो।"

"अविनाश के रहते वह ऐसा कुछ नहीं करने पायेंगे।"

"उनका क्या चलाना? वह कुश है तो अभी लड़का ही न।"

"वाह! हट्टा-कट्टा तेइस साल का जवान। शादी हुई होती तो दो-चार बच्चों का बाप हो गया होता। क्यों दया?"

हम दोनों—भाभी और देवर—खिलखिला कर हँस पड़े और अपने हाथों से अपना मुँह छिपाती कमरे से दौड़कर भाग जाने को खड़ी ही हुई थी दया कि मैंने उसे पकड़ लिया और कहा—

"इसमें शरमाने की कौन-सी बात है दया।"

इतने में मैंने उसके दोनों हाथों को खींचकर उसके मुँह पर से हटा दिया। तब उसने आँखें बन्द कर लीं और आँख मूँदे ही मूँदे बोली—

"छोटे जीजा! आप मुझसे मजाक...." कहकर चुप हो रही। उससे मारे शर्म के आगे बोला नहीं गया।

"पगली, तुझसे मैं क्यों मजाक करने लगा! फिर अविनाश से तुझसे वास्ता ही क्या?" इतने ही में भाभी ने उसे डाटते हुए कहा—

"दया! कहाँ क्या हो रहा है और कहाँ तुझे सूझी है शैतानी।"

"जीजी, मैं क्या कर रही हूँ।" बस उसकी आँखें भर आयीं लेकिन उसकी बड़ी जीजी ने दूसरे ही क्षण उसे अपने गाद में ले लिया और दुलारकर, पुचकारकर उसे खुश कर लिया और यह सब मिनट दो मिनट में हो गया। फिर भाभी बोलीं—

"मेरा जी बहुत ही घबड़ा रहा है। मुझे जैसे बहुत ही डर लग रहा है। मन में अनेक प्रकार की तस्वीरें आ-आकर बनती-बिगड़ती चली जा रही हैं। पता नहीं क्या होनेवाला है। भैया, देखो न, कैसे हैं वह।" इतने ही में पास वाले कमरे में किसी चीज के विस्फोट से पैदा होने वाली कोई आवाज हुयी।

बस फिर क्या था? भाभी चिल्ला उठीं—

"गोली मार दिया।" और वह पलङ्ग पर झट बेहोश होकर गिर पड़ीं।

मेरा इशारा पाने के साथ दया ने उन्हें सम्भाल लिया। मैं इन्हें देखूँ या जहाँ से आवाज आयी है वहाँ जाऊँ! दौड़ा भागा रसोई घर में पहुँचा तो देखा कि अँगीठी में से पक्की सीमेन्ट की फर्श पर लाल अङ्गारे गिरे पड़े हैं और वे ही धीरे-धीरे, कभी जोर-जोर से चटख पड़ रहे हैं। जान में जान आयी। पाँच मिनट में भाभी को तात्कालिक चिकित्सा द्वारा अच्छा कर उठाकर बैठा दिया गया। बार-बार उन्हें लेट जाने को कहा लेकिन वह जरा ऐसी दकियानूस किस्म की थीं कि राजी ही नहीं हुयीं। जब उन्हें सारी बातें बताईं तो हँसने लगीं। बोलीं—

"क्या बताऊँ? उस वक्त मेरा दिमाग ही उड़ा-उड़ा जा रहा था। आँखों के सामने लाल-पीला दिखायी दे रहा था और उस आवाज ने मेरी रही सही हिम्मत ही छीन ली। आशंका और भय तो मुझे पहले ही से दबोचे था और इस आवाज ने तोप में पलीते का काम किया। यों अब भी दिल बैठा ही जा रहा है लेकिन घबड़ाहट कुछ कम जरूर है पहले से। हाँ, तो देखो, कब लौटते हैं?"

"काम खतम किया और आये। अच्छा भाभी! एक बात पूछ सकता हूँ?"

"एक नहीं, सौ...."

"इस बार भी बड़े भाई क्या खाली ही हाथ लौटेंगे या लड्डू लेकर आयेंगे? जरा गौर करो। हो न हो, तुम जरूर चुपके-चुपके ज्योतिष का अभ्यास करती होगी। इतना ही नहीं, किसी देवी-देवता का भी जैसे तुम्हें इष्ट हो कि जो भी बात कहोगी, वह जरूर ही सच निकलेगी।"

"बेवकूफ न बनाओ। होती इतनी बड़ी ज्योतिषी तो रखे न रहती

तुम्हारे बड़े भाई को मुट्ठी में ? क्या ऊषा शर्मा का ताब था कि उन्हें अपने चंगुल में फँसाकर रखे रहतीं ?"

"भाभी! यह सब तुम्हारी महानता, शालीनता के प्रमाण हैं। अपने स्वार्थ साधन के लिये तुम दैवी शक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहती। इसीलिये तो परोपकारार्थ की गयी तुम्हारी भविष्य वाणी सच उतरती है।"

"कुछ नहीं। यह सब तुम्हारी बेकार की बातें हैं।"

"फिर भी अन्दाज से ही कुछ अनुमान लगाओ।"

"लेकिन अपने अनुमान को मैं एक पुर्जे पर लिखकर उसे, सामने ठाकुर जी, के चरणों के नीचे रख आती हूँ। जब वह आयँगे तो पढ़ लेना निकाल कर।"

"यही सही लेकिन मेरा अनुमान...."

"बोलो नहीं। लिख लूँ अपनी बात तब तुम कुछ कहना।" उन्होंने कुछ लिखा और पुर्जे को यथास्थान रख आयीं। बोलीं—

"अच्छा, बताओ, तुम्हारा क्या ख्याल है।"

"बस, फिफ्टी-फिफ्टी।"

इसी वक्त आकर वहाँ खड़ा हो गया अविनाश और बोला—

"ऊषा शर्मा के पेट में सख्त तकलीफ पैदा हो गयी है। सिविल सर्जन अभी देखकर गये हैं। दवाइयों का पुर्जा लेकर मैं उन्हें लाने जा रहा हूँ। वाइस प्रिन्सिपल चार्ज लेने को अभी बुलवायी गयी हैं। वकील साहब वहीं हैं। सारा काम खतम करके दोपहर तक आवेंगे। आज कचहरी भी न जा सकेंगे। अपने मुंशी को यह खत दिया है। उसे जाकर इसे दे आता हूँ। साथ ही अपने दोस्तों से भी कह देना है कि अभी उनकी जरूरत नहीं। शाम को उन्हें सारी बातों की खबर मिल जायगी। और आपका अनशन आज स्थगित रहा।"

"बड़े भाई ने कहलाया है ?"

"जी और मैं उनका समर्थन करता हूँ। शाम तक ऊषा अपने घर चली जायँगी।"

"लगे हाथ मेनका और रधिया से भी ये बातें बताते जाना।"

"रधिया को सारी बातें समझाकर मैंने रास्ते ही से आपके घर भेज दिया।"

"वाह अविनाश! बड़े ही होशियार हो। तभी तो....दया तुम्हारा चुनाव 'एक्सेलेन्ट' रहा।"

दया भड़क उठी। बोली—

"फिर वही बात।"

अविनाश तेजी से निकल गया लेकिन मुझे दोपहर तक यहीं रुके रहने के लिए कह गया।

१३

"सुबह से नाश्ता-चाय कुछ भी नहीं कर सके होगे। अब दस बजने को आये लेकिन अब तो तुम्हें जलपान कर ही लेना चाहिये।"

"बड़े भाई आ जाते तो साथ-साथ खाना ही खा लेता लेकिन आज कोई बढ़िया चीज खिलाना भाभी।"

"वह मैंने खुद ही सोच रक्खा है। महराजिन को भी आदेश दे आती हूँ लेकिन उनके आते-आते भी अभी दो-तीन घन्टे लगेंगे। तब तक कुछ चाय नाश्ता जरूर ही कर लो।" कहती हुई भाभी वहाँ से उठकर रसोई घर की ओर चली गयीं।

दया चुपचाप जाने क्या सोच रही थी कि भाभी के जाने के बाद ही वह उठने लगी तो मैंने उसे रोकते हुए कहा—

"तू तो भला बैठ।"

"घर जाना चाहती थी, माँ प्रतीक्षा करती होंगी। खाने-पीने का समय हो रहा है। न पहुँच सकी समय से तो सिर पर सारा मकान ही उठा लेंगी।"

"बहाने की बात और है, नहीं तो किसी से कहलाया भी जा सकता है कि मैं बड़े जीजा के यहाँ ही आज खाना खा लूँगी।"

"देखिये, आप कुछ का कुछ समझने लग गये। आप जैसे महान पुरुष के समीप बैठकर अच्छी-अच्छी बातें सुनना कौन नहीं चाहेगा लेकिन जरा माँ की...."

"मेरे मजाक से तू घबड़ा गयी?"

"नहीं, नहीं, अपने अधिकार का कौन नहीं प्रयोग करता? आपका अधिकार है मजाक करना और मेरा कर्तव्य है हँसकर उसे टाल देना।"

"वाह रे दया! तू तो बड़ी समझदार हो गयी है। फिर रोने क्यों लगी?"

"वह तो जीजी ने डाटा था। इसलिये...."

"समझ गया। अच्छा, रुक रही है न?"

"अगर मैं घन्टे भर में लौटकर आ जाऊँ तो कैसा रहे।"

"तब तक मैं यहाँ मक्खी मारता रहूँ? फिर तेरे ही फायदे की बातें करने के वास्ते मैं तुझे रोक रहा था। नहीं तो मुझे क्या?"

"देखिये, अब आप ऐसी बातें करने लगे। ठीक है, नहीं जाऊँगी। मेरा यही ख्याल था कि घन्टे भर में मैं भी आ जाती और आप भी तब तक घर पर जाकर सारी बातें बताकर लौट आते लेकिन आप कुछ दूसरा ही सोचने लग गये। अच्छी बात है...."

"दया! यह राय तेरी ठीक रही। अच्छा जा, लेकिन आ जाना घन्टे भर में।"

"वाह ! छोटे जीजा। एक मिनट पहले वक्त से। अच्छा।" कह कर वह अपनी जीजी से मिलती हुई अपने घर चली गयी।

चाय-नाश्ता आ जाय। कम से कम इतना काम तो यहाँ खतम कर ही लूँ तब घन्टे भर के लिये घर हो आऊँ। यही सोच रहा था कि भाभी ने चाय की प्याली और नाश्ते का प्लेट सामने लाकर रख ही दिया। और बोलीं—

"मुँह आज भले का देखा था?"

"क्यों भाभी?"

"अरे जो यह सब मिल गया, नहीं तो भला यह चीज इस वक्त कहाँ मुअस्सर होती?"

"सही कहा लेकिन सुबह-सुबह सबसे पहले मेनका ही दीख पड़ी थी। उसी का मुँह देखकर उठा था।"

"बड़ी ही लक्ष्मी है?"

"इसमें क्या सन्देह!"

"कोई मामूली बात थी। कितना रगड़ किया तब जाकर वह रास्ते पर आये और उन्होंने कितना रगड़ किया होगा तब वह महारानी राजी हुयी होंगी।"

"यह सब हम लोगों का काम ही है। संघर्ष के लिये अवतार ही लिया है पुरुष ने। चूड़ी पहन कर बैठना तो अपना काम है नहीं। लेकिन भाभी, तुमने भी यथेष्ट सहयोग दिया। मैं शायद ही इसे कभी भूल सकूँ।"

"मैंने क्या किया? कुछ भी नहीं। मेरी बात भला वह सुनते कभी? बस, ऊषा ही उनकी सर्वस्व बनी थी।"

"भाभी! एक बहुत ही मजेदार बात सुनाऊँ।"

"वह क्या?"

"लेकिन अगर बे-अदबी माफ कर देने का वायदा करें।"

"कहो भी सही। गन्दी भी बात होगी लेकिन उन्हें ऐसे शब्द समूहों द्वारा प्रकट करोगे कि बहुत ही समझदार लोग उसका मतलब पकड़ पायेंगे। कलम के पक्के हो न।"

"कुछ भी नहीं भाभी। मैं क्या कहूँ? दुनिया ज्यों-ज्यों आगर है। खैर, यह जानकर तुम्हें अत्यन्त आश्चर्य होगा कि बड़े भाई अभी तक ऊषा के यहाँ जाकर केवल शाकाहारी ही बने रहे। इससे जरा भी आगे नहीं बढ़े।"

"तब से घर में ही कहाँ वह अशाकाहारी रहे। कभी इन चीजों का यहाँ उपयोग नहीं किया। वही बात वहां भी। फिर ऊषा के यहाँ तो किसी और ही किस्म की आहार की खोज में वे जाते थे।"

"वही तो शाकाहारी से मेरा मतलब है। समझा नहीं अभी तक। बड़ी मुश्किल है। यों समझिये कि ऊषा और बड़े भाई साथ-साथ खाते-पीते थे। गपशप होती थी। प्रेम पूर्ण सरस आलाप भी हो जाता था। बस इससे आगे न एक अँगुल वह बढ़ीं और न यही। पीते रहे, यह बात दूसरी है लेकिन सब कुछ का यह प्रयोजन नहीं होता था कि शाकाहारी से बढ़ कर उन्हें अशाकाहारी बन जाना पड़े।"

"समझी लेकिन प्रमाण....फिर जो कुछ भी रहा हो उनका उससे सम्बन्ध''''अब क्या रहा उसका रोना।"

"हाँ, अब क्या? न रही बाँस और न बजेगी बाँसुरी।"

"वही तो। लेकिन तुम्हें ऐसा बड़े भाई ने बता दिया और तुमको विश्वास हो गया?"

"भाभी, अगर दोनों का सम्बन्ध सीमित न होता तो मैं लाख सिर पीट कर हार जाता लेकिन कामयाबी हर्गिज न मिलती। और तुमसे जो इतनी बात भी मुँह से बोल देते रहे, यह तो रहता दरकिनार, फूटी आँखों से भी नहीं देखना पसन्द करते।"

"देवर जी! आपको क्या मालूम? इस सीने पर घन टूटे हैं। बर्दाश्त किया। उफ् तक नहीं किया। माँ तक को मालूम न हो सका कि हम दोनों के बीच जरा सा भी मनमुटाव है। जोश में आकर जो थोड़ा सा इतना कह भी डाला वह भी मैंने अनुचित किया। परमात्मा मुझे क्षमा करे। मेरा तो विश्वास है कि आज दिन जो विजय प्राप्त हुयी है उसका कारण केवल दो है। दो क्या एक ही! तुम्हारे आचरण की पवित्रता को ही श्रेय मिलेगा इस विजय का। चाहे जिद कहो, लगन कहो, रगड़ कहो, संघर्ष कहो चीज एक ही है। तुम्हारे दृढ़ व्यक्तित्व, आचरण और कर्तृत्व की ही यह विजय है।"

"जी नहीं, मुँह पर तारीफ बेवकूफ बनाने के लिये लोग करते हैं। किन्तु, ऐसे ही कभी कदा, मुँह पर भी किसी की तारीफ करने से अपने को कोई रोक न सके तो उसके साथ यह नियम नहीं लागू होता। जैसे मैं ही तुम्हारे विषय में कुछ आगे कहने जा रहा हूँ। मेरे ख्याल से तुम्हारी सहिष्णुता-शालीनता ने कुछ कम काम नहीं किया विजय प्राप्त करने में। फिर एक सती की शुभकामना कैसे व्यर्थ जा सकती थी।"

"चाय तो ठंडी हो गयी। फिर बना लाती हूँ।"

"नहीं-नहीं, मिठाइयाँ खा ली हैं। अभी आध घण्टे में लौटकर आ जाता हूँ। तब तक बड़े भाई भी आ ही जायँगे।"

"तुमको न पाकर कहीं मुझपर न बरस पड़ें?"

"उनके आने के पहले ही आ जाऊँगा।" कहकर मैं वहाँ से सीधे घर चला आया।

देखा, दरवाजे पर बिछे हुये बड़े से पत्थर पर महतो सुखईराम बैठा हुआ है और दो-तीन छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेल रहा है। सबसे छोटा बच्चा उसकी मूँछे पकड़ कर खींच रहा है। और कभी उन बच्चों के मनोरंजनार्थ वह हँस देता है तो कभी झूठमूठ के वास्ते

हाथों से आँखें मलता हुआ "ऊँ-ऊँ" करने रोने लगता है। मुझे देखते ही हहा कर उठ खड़ा होने के लिये बैसाखी की लकड़ी खोजने लगा लेकिन लड़के उसे कहीं छिपा आये थे। वह लकड़ी के लिये चिल्लाने लगा तो एक छै-सात साल का बच्चा उसे "लूलू" कहकर चिढ़ाता हुआ घर में भाग गया। मैंने कहा—

"किसी ने क्या तुम्हारी लकड़ियाँ छिपा दी हैं?"

"बाबू! सब बच्चे हैं, खेल-कूद रहे हैं, मौज ले रहे हैं। बादशाही उमर है। खुद ढूँढ़ कर मुझे दे जायँगे। आप इस फेर में न पड़ें। हाँ, तो आखिर दे ही मारा आपने।"

"महतो! सब भगवान की कृपा है।"

"हाँ बाबू, इस्सर तो मुख्य है मुदा हमारे इस्सर तो सरकार हैं।"

"अरे नहीं, ऐसा न कहो। हाँ, रधिया कहाँ है।"

"मलकिन के चुनरी में चफनी होये। ओके दूसर ठाँव कहाँ। ओकर जीव परान मलकिनै में बसऽथ। मलकिन ओके जन्तर नियर मढ़ाइ कऽरक्खे रहऽथीं।"

"महतो! बहुत खुश हो?"

"आज कऽ दिनऽई खुशी कऽ हौ सरकार।"

"अच्छा...." कहता हुआ मैं भीतर चला गया। वहाँ सचमुच एक दूसरी ही समाँ बँधी थी। रसोई का बाहरी काम जैसे साग-सब्जी को साफ कर काट कतर के रखना, चटनी पीस लाना, आँटा गूँधना, रोटी बेल देना यह सब करने में राधिया व्यस्त थी और श्रीमती जी कभी रसोई घर के अन्दर चौके में जातीं और कभी बाहर आतीं। इस वक्त दोनों पास-पास रसोई घर के बाहर बैठ कर 'गलचौर' कर रही थीं। मुझे देखते ही देवी जी ने उठ कर हँसते हुये मेरा स्वागत किया। राधिया भी खड़ी होकर मुस्काने लगीं। देवी जी बोलीं—

"आज तो विजयोत्सव मनाना चाहिये।"

"कौन सी बड़ी बात ही हो गयी ?"

"जरूर ! इसीलिये दाना-पानी छोड़ कर जान देने जा रहे थे और अब मामला सलट गया तो जैसे यह कोई बड़ी बात ही नहीं थी।"

"मेनका ! यह जिन्दगी है। तुम देख चुकी हो, इस सर पर कितनी ही बार कितनी आँधी बयार बह चुकी है लेकिन भगवान सब पार ही करते गये न।"

"भगवान की कृपा तो रही ही और उनके बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिल सकता लेकिन मेरे कहने का मतलब यह है कि आदमी को अपने दिन न भूल जाना चाहिये।"

"जिस रास्ते से होकर मैं अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिये चला और सफलता की चोटी पर जा पहुँचा, उसके एक-एक कंकड़-पत्थर को मैं शीस नवाने को तैयार हूँ। रास्ते में चलने वाले, रास्ता बताने वाले, ढाढ़स देने वाले, बढ़ावा देने वाले, भूल जाने पर राह बताने वाले हर एक छोटे और बड़े राही के चरणों को चूमने में मुझे ज़रा भी झिझक नहीं। जैसे तुम्हीं हो, रधिया है। सभी ने मेरे रास्ते को आसान बनाया। मेरा फर्ज होता है कि मैं तुम लोगों के चरणों की धूल को अपने मस्तक पर चढ़ालूँ।" कहकर हँसी हँसी, नाटकीय ढंग में इस भाव को अभिव्यक्त करने को मैं बढ़ा और यों झुका जैसे सचमुच ही मैं मेनका के चरण छूने को बढ़ रहा हूँ और इतने स्वाभाविक ढंग से मेरी यह नाटकीय भावाभिव्यंजना हुयी कि देवीजी तो डाँक कर चौके में चली गयीं और रधिया अवाक-सी पहले खड़ी रही। फिर मालकिन को वैसा करते देखकर खुद भी छटक कर बगल वाली कोठरी में भाग गयी।

मैं खूब खिलाखिला कर हँसने लगा। तब तक दो तीन छोटे-छोटे बच्चे भी आकर मेरे संग हँसने लगे। उधर देवी जी आधा हँसती

और पूरा मुस्काती हुयीं चुपचाप इशारे से रधिया की ओर हाथ दिखा दिखाकर अपना माथा छूने लगीं, जैसे चुपचुप अपना माथा पीट रहीं हों, और मुँह बिचकाने लगीं। मैंने वह नाटक बन्द किया। बोला—

"तुम लोग इधर-उधर क्यों चली गयीं ?"

"आदमी से अनर्थ दो ही समय होता है—रधिया चली आ बाहर"—रधिया कोठरी से निकल कर आ गयी और फिर साग काटने लग गयी। पुनः देवी जी ने कहना शुरू किया—

"हाँ, दो ही समय। जब वह बहुत खुश हो या जब बहुत ही दुखी हो। ज़रा अपने को कन्ट्रोल में रखें आप। बूढ़े होने का नम्बर आने लगा है लेकिन बचपना गया नहीं।"

"कौन कहता है कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। सच पूछो तो मेरी नौज-वानी अब से शुरू ही होने जा रही है।"

"खैर, बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिनके लिये अलग वक्त ही निश्चित है। इसलिये....हाँ, अविनाश सारी बातें बता गया जरूर लेकिन वह थोड़ा जल्दी में था।"

"विस्तार में बातें तो वक्त से ही बताऊँगा क्योंकि जब वाइस-प्रिन्सिपल चार्ज ले लें और रधिया की पुनर्नियुक्ति का पत्र दे दें तब इस यज्ञ की पूर्णाहुति हुयी समझो।"

"ठीक है, खाना भी चटपट तैयार किये देती हूँ।"

"जी नहीं, आप लोग खा पी लें। रधिया तू भी यहीं खा लेना और महतो को भी खिला देना। सुना तुमने ?"

"जी अच्छा बड़े भाई।" रधिया ने कहा।

"हाँ, मेरा खाना क्षमा भाभी के यहाँ दोपहर में होगा खन्ना जी के साथ ही।

"लेकिन शाम का खाना 'बुक' न कर आइयेगा।" देवी जी ने कहा।

"नहीं जी····हाँ तो सिर्फ तुम लोगों को इतमिनान हो जाये, बस इसी लिये चला आया था। अच्छा चला।" कह कर मैं खन्ना जी के यहाँ जाने को घर से निकला।

महतो से दो-दो बातें फिर हुयीं और मेरा रिक्शा खड़ा ही था, उसी पर फिर वापिस लौट पड़ा।

भाभी ने पहुँचते ही पूछा—

"रधिया को सब कुछ मालूम हो गया ही होगा। बेचारी बहुत ही खुश होगी।"

"जी, उसे सारी बातों का पता लग चुका था?"

"चलिये, उसकी रोज़ी भला रह गयी।"

"भाभी, रधिया की रोजी की कोई बात नहीं, उसकी परवरिश का सवाल उतना महत्वपूर्ण नहीं था। वह खुद पेट पाल लेती मेहनत मजूरी करके। फिर अभी मेरी भी हालत उतना खस्ता नहीं कि उसकी मदद न कर सकता लेकिन यहाँ वसूल का सवाल था। अन्याय का प्रतिकार न करना कायरता है। सोचो, एक की ज़ात से, एक की बुराई से, व्यक्ति, समाज सभी की स्थिति खतरे में पड़ी रहे और कोई उस बुराई को दूर करने के लिये कमर कसकर सामने आने की हिम्मत न करे। रधिया की रोज़ी, तुम्हारी और बड़े भाई के बीच भयंकर खाँई, युवक रामलाल की गरीबी, पत्नी, बच्चे, गृहस्थी, बड़े भाई का चरित्र सभी पर खतरा आ उपस्थित हुआ था। उधर सामूहिक प्रयत्नों का प्रशंसनीय परिणाम वह कालिज था जिसकी लुटिया किसी भी क्षण डूब सकती थी। खैर, अब तो व्यक्तिगत एवं सामाजिक सभी तरह की समस्यायें हल हो गयीं लेकिन एक जोड़े जीवों की जान अभी भी खतरे में पड़ी ही है।"

"वे कौन हैं?"

"दया और अविनाश।"

"हाँ, माँ जरूर इन दोनों को एक होने का विरोध करती हैं लेकिन यह समस्या बिलकुल अलग है।"

"बिलकुल ऐसी बात नहीं। यह समस्या भी मुख्य समस्या के इर्द-गिर्द चक्कर काटती रही है लेकिन मुख्य समस्या हल हो गयी लेकिन यह हल न हो सकी। यों समझो, इसकी सारी जिम्मेदारी बड़े भाई पर है।"

"तुमको इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी नहीं है।"

"मुझे जितनी भी जानकारी है वही इतनी काफी है कि अभी मैं तुम्हारे सामने साबित कर देता हूँ कि बड़े भाई ही इसके जिम्मेदार हैं। बुरा न मानना।"

"नहीं, नहीं, ये तो आपसी बातें हैं, कहो।"

"बड़े भाई का जोर माँ पर है?"

"थोड़ा बहुत लेकिन इतना नहीं कि वह उस बूढ़ी की राय जरूर ही बदल सकें। बड़ी जिद्दी हैं माँ।"

"अच्छा छोड़ो इस बात को। इस तरह से समझो। ऊषा तुम्हारे और बड़े भाई के बीच खड़ी हुयी और तुम दोनों को दोतरफ कर दिया।"

"हाँ।"

"तुम्हारी तरफ से बड़े भाई की दिलचस्पी घटी।"

"हाँ।"

"तुम्हारी बहन दया से वह कैसे खुश रह सकते थे।"

"यह भी सही।"

"फिर दया ने उनकी वासना को प्रोत्साहन प्रदान नहीं किया।"

"जरूर।"

"इस चारित्रिक पतन की जिम्मेदार हैं ऊषा।"

"जरूर।"

"फिर दया से बड़े भाई का चिढ़ जाना स्वाभाविक था। इसलिये दया-अविनाश को एक करने की बात सोचना दूर, उसे दूर करने की फिकर में वह पड़े होंगे।"

"यह भी सही।"

"उधर बूढ़ी माँ अविनाश से बुरा मानती ही थीं। इसलिए इन्होंने भी उन्हीं का समर्थन किया होगा।"

"जी हाँ।"

"अब यह सोचिये कि अगर ऊपा बीच में न आयी होती तो ये तमाम बातें क्यों पैदा ही होतीं? ये बातें पैदा न हुयी होतीं तो तुम दोनों की ताकत भी बँटी न होती। दोनों तन-मन से लिपट जाते तो बूढ़ी की हस्ती नहीं थी कि तुम लोगों की मर्जी के खिलाफ सोचती या कोई कदम उठाती। आखिर दया और तुम्हारे सिवा उसे और कौन है?"

"बिलकुल सही कहा। मान गयी, इस अनर्थ में बड़े भाई का कम हाथ नहीं है लेकिन माँ भी कोई कम नहीं हैं। बात यह हुयी कि पिता जी की मृत्यु के उपरान्त माँ हो गयीं स्वतन्त्र। और मैं कहती हूँ कि गो० तुलसीदास जी की वह चौपाई सोलह आने सच है। 'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरैं नारी।' बहुतों को मेरी यह रूढ़िगत बात अप्रिय एवं दोषपूर्ण प्रतीत होगी लेकिन यदि इस तथ्य को प्रमाणित होते देख रही हूँ इतनी बड़ी तादाद में तो क्यों न मैं इस बात को अच्छा कहूँ। मैं यह समझती हूँ कि न हर पुरानी चीज बुरी है और न हर नयी चीज अच्छी ही। हाँ, तो माँ इस तरह हो गयीं बेनकेल की। उनका एक मन्त्री है जो उन्हीं की तरह बूढ़ा है। कोई दूर का सम्बन्धी है। उसी ने उनके कान बुरी तरह भर दिये हैं। अब वह कहती हैं कि अविनाश से सम्बन्ध करने में मेरी सामाजिक प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा।

आपके बड़े भाई ने भी उस वक्त उन्हीं के हाँ में हाँ मिला दिया और बात बढ़ गयी।"

"लेकिन अब इस बिगड़ी हुयी स्थिति का सुधार करना जरूरी है। क्यों?"

"कर सको तो इसे भी करो।"

"हाँ, मेरा तो इसीलिये जन्म ही हुआ है। बूढ़ी माँ से मेरी मुलाकात जो एक बेर हो जाती तो जो सुनाता कि बस...."

"बेआबरू होने की ठान लेना तब माँ से बातें करना।"

"बड़ी मोटी पर्त है मेरे खाल की?"

"फिर क्या है?"

"हाँ, दया अभी तक नहीं आयी?"

"जब वह आने पाती हो तब न आये। कौन जाने माँ भी सङ्गसङ्ग आती हों?"

"तब तो और अच्छा है। इस मामले को भी सुलझाना है भाभी।"

"मैं कब न चाहूँगी। मेरी छोटी बहिन ही है।"

"अब आप दोनों प्राणी मिलकर इसे सुलझाइये क्योंकि मैं दो एक रोज में काशी चला ही जाऊँगा और फिर जब वहाँ गया तो वहीं का हो जाऊँगा। यह जानती ही हो।"

"वाह! अभी कल जो गोपू की वर्ष गाँठ है और तुम...."

"तब तक रहूँगा ही लेकिन अब मैं इस मामले में कुछ कर न सकूँगा।"

"इसलिये कि यह ज्यादा नाजुक है और कोई रास्ता समझ में नहीं आ रहा है।"

"नहीं-नहीं। वैसी कोई बात नहीं है। अव्वल तो यह कि अपने को उतना अब अवकाश नहीं रहा। फिर कुछ आपको भी करना

चाहिये। और आप न करना चाहें, तो दया से कह दीजिये। मामला इतना आसान है कि लड़का-लड़की राजी हैं तो तीसरे के बोलने का जमाना ही नहीं है। वे दोनों सारे मसले को अपने आप हल कर लेंगे। मगर हैं दोनों चरित्रवान, निष्ठावान और उन दोनों को सामाजिक परम्परा के प्रति पूरी आस्था है। इसीलिये उन्हें हमारी, तुम्हारी और दुनिया की जरूरत भी है, नहीं तो कभी...."

"जनाब, कहीं यही सब पाठ न पढ़ा देना, नहीं तो बूढ़ी मेरी ड्योढ़ी पर आकर सर पटक कर जान दे देगी। तुम उसके स्वभाव को जानते नहीं।"

"बाबा, इसी नेकनामी-बदनामी के डर से मैं इस मामले से दूर भागना चाहता हूँ।"

"लेकिन तुम्हारी जाति ही कुछ और है। तुम उन लोगों में नहीं जो समस्याओं से घबड़ाकर जिन्दगी से दूर भाग जाते हैं।"

"भाभी, बाढ़ देना बन्द करो। इतना शान पर न चढ़ा दो कि बलि का बकरा ही बन जाऊँ।"

"मैं सच-सच कह रही हूँ। विश्वास करो। दुनियाँ से दूर रहने की कोशिश करके देखो, तुमसे रहा ही नहीं जायगा और जिस दिन तुम्हारे जैसे लोग दुनिया से दूर रहने लगे, उस दिन दुनिया का बेड़ा ही गर्क समझो।"

"मालूम होता है कि तुम बैठने न दोगी मुझे।"

"जैसे इतना तमाम काम किया यानी किसी का घर उजड़ रहा था, उसे बसा दिया, किसी का प्रेमी बिछुड़ा था, उसे मिला दिया...."

"लेकिन भाभी, मुझे क्या मिला? इतना भी नहीं बन पड़ा आपसे कि....वे शब्द मुँह से नहीं निकल रहे हैं।"

भाभी के अधरों पर मुस्कान थी और आँखों में लज्जा। बोलीं—

"शरारती भी हो, महात्मा भी हो। मैं खूब समझता हूँ कि क्या कहना चाहते थे।"

"यह लीजिये। आप कुछ का कुछ समझने लगीं। प्यार के भी प्रकार होते हैं और उन्हीं में से किसी एक के पाने का मैं अपने को उचित अधिकारी समझता हूँ। इसलिये शरारती हो गया?"

"मैं हारी, तुम जीते।"

"इससे काम नहीं चलेगा?"

"तो जो कहो।"

"तुम्हें स्वयं सोच लेना चाहिये।"

"मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही है।"

"और मेरी जबान उन शब्दों का भार ढोने को साफ इन्कार कर रही है।"

"उन्हें लिख दो, मैं पढ़ लूँ।"

"हाथ नहीं उठ रहे हैं।"

"सङ्केत से सही।"

"तुम्हारी जैसी नारी उस सङ्केत को समझ नहीं सकती।"

"फिर उसे रहस्य ही बने रहने दो।"

"नारी स्वयं रहस्य है और रहस्य प्रिया भी....इसलिये तुम तो यही सलाह दोगी लेकिन मैं अपनी मजदूरी माँगता हूँ, वही मुझे चाहिये लेकिन सिक्कों की शकल में नहीं।"

"फिर किस शकल में?"

"दोगी या नहीं?"

"माँगो भी सही?"

"मैं ऐसा मँगता नहीं। पहले दाता का दिल थहा लेता हूँ। कोई साधारण याचक नहीं हूँ।"

"जो माँगो, वही दूँगा।"

"लेकिन तुम्हारे पास अपना है ही क्या ?"

"फिर वही बात। हाथ जोड़ती हूँ, ज्यादा तङ्ग न करो। तुम्हारे जैसे एक देवर और मुझे मिल जाँय तो बस मेरा...."

"घबड़ाओ नहीं भाभी।"

"सरकार! आप क्या चाहते हैं? कहिये भी।"

"मैं जानता हूँ कि वह चीज ऐसी है जो अनायास मिल जाती है, माँगने से मिलती भी रहेगी तो नहीं मिलेगी। इसलिये उसे मैं माँगूगा ही नहीं। उसके लिये तो लीजिये जिद छोड़ दिया। लेकिन अभी और भी बहुत सी चीजें हैं।"

"वही सही, उन्हीं को बता जाओ।"

"अब ज्यादा तङ्ग न करूँगा। क्यों? अच्छा, मैं तुमसे एक बात के लिये पक्का वायदा करा लेना चाहता हूँ। बोलो, तैयार हो।"

"हाँ, जैसे विश्वास हो तुम्हें वैसे विश्वास दिलाने को तैयार हूँ।"

"आपकी जबान काफी है। बस इसी बात का वचन दीजिये कि आखिरी साँस तक दया-अविनाश को विवाह सूत्र में आबद्ध करने के लिये प्रयत्न करती रहोगी।"

"मंजूर है।"

"बस इतना ही....इससे ज्यादा जौ भर भी नहीं।"

"इतनी-सी बात के लिये...."

"इसका पता चलेगा तुम्हें आगे कि बात इतनी-सी है या क्या है? देखो, अविनाश के लिये मेरे हृदय में बहुत बड़ा स्थान है और दया के लिये भी। इसलिये वादे को भूलना नहीं। लेकिन भाभी जो असली चीज थी वह न मैंने माँगा और न तुमने दिया।" कहकर मैं मुस्काने लगा।

वह भी हँसती हुयी बोलीं—

"घबड़ाओ नहीं। सायंकाल मेनका को कल घर आने के लिये

निमन्त्रित करने आ रही हूँ। तब तुम्हारी शरारत का सारा पोल उससे खोल दूँगी। उसके रहते तुम मुझपर आँखें गड़ाने चले हो ?"

"क्या भाभी अब यही होगा। मैंने तुम दोनों को मिलाया और अब तुम मेरे घर में फूट डाल कर मुझे मेरी बीवी से अलग करना चाहती हो।"

इतने ही में वाइस प्रिन्सिपल, खन्ना जी, अविनाश सभी वहाँ आ पहुँचे।

देखते ही बड़े भाई से मैंने कहा—

"अँतड़ियाँ अकड़ गयीं आपकी इन्तजारी में ?"

"क्यों खाना नहीं खाया अभी तक ?"

"खूब, इतना बड़ा काम करने गये थे आप वहाँ और मैं यहाँ बैठकर छप्पन प्रकार के मोहनभोग उड़ाता। अब आप आ गये। पहले मैं आपके चरण स्पर्श कर लूँ क्योंकि अब से आप मेरे बड़े भाई नहीं, मेरे लिये एक पूजनीय पुरुष हो गये।"

"फिजूल का मखौल छोड़ो। मुझे भी बहुत भूख लगी है। तुमने भी खाया न होगा क्योंकि तुम सत्याग्रही ठहरे। जब तक पूरा-पूरा विश्वास न हो जाये कि काम पक्के तौर पर हो गया तब तक भला कैसे अपने कौल से डिग सकते थे। इसीलिये मैं वाइस प्रिन्सिपल को भी लिवाता आया हूँ। इन्हें सारा कागज दिखा दीजिये।"

"बड़े भाई, मुझे इन चीजों के देखने की जरूरत नहीं। मुझे क्या आपका विश्वास नहीं है ?"

"होता तो क्यों पीछे-पीछे अपने 'एडीकाल्ग' को"—अविनाश की ओर इशारा करते हुये कहा—"भेजते।"

"न, न, यह बात नहीं। लेकिन अविनाश को क्यों भेजा था, इसका कारण सुन लें लेकिन आपके कान में कहूँगा।" कहकर मैं उनके कान के पास सट गया और फुसफुसाते हुये बोला—

"कुछ गोलियाँ आपकी सदरी में रह गयी थीं। इसीसे मुझे और भाभी को डर लगा कि कहीं गुस्से में आकर आप ऊषा का काम तमाम ही करके न लौटें।"

लेकिन उन्होंने इसका जवाब सांकेतिक शब्दों में जोर से बोलते हुये दिया—

"औरत के कहने में आ गये और डर गये लेकिन जिन्दगी अभी तमाम पड़ी है। देखना, औरतों के गुणों को न अपना लेना वर्ना....."

"आदमी कड़ा होता है? औरत मुलायम होती है। लेकिन आदमी जब मुलायम होने लगता है तब जानते हैं कि इसका क्या परिणाम होता है।"

"यही कि उसमें तमाम जनानी आदतें आने लगती हैं। अक्लमन्दी से दूर होने लगता है, बात-बात में उसे डर मालूम होने लगता है।"

"बड़े भाई बिलकुल गलत। तब आदमी-आदमी न रह कर युग प्रवर्तक हो जाता है।"

"अच्छा, यह सब आगे-पीछे बनना। पहले चल कर पेट पूजा कर लो।"

वाइस प्रिन्सिपल को काम सम्भालने का आदेश देकर वह भाभी की ओर मुखातिब हुये किन्तु तब तक तो भाभी रसोई घर में आवश्यक व्यवस्था करने के लिये वहाँ से चली गयीं थीं। तब उन्होंने अविनाश से कहा—

"अरे भाई! तुमने भी खाना न खाया होगा।"

"जी, ऐसी तो बात नहीं। मैं खाना-खा चुका हूँ। अब आप लोग भोजन करने जाँय। बड़ी देर हो रही है। और मुझे भी जरा अभी घर जाना है।"

मैंने उसे रोकते हुये कहा—

"बैठो न। ऐसी कौन-सी जल्दी पड़ी है। कौन-सा काम आ पड़ा है।"

"दादा, जरूरी काम है। सायंकाल आप से घर पर मिलूँगा! आज्ञा है न।"

"अच्छा जाओ भाई। लेकिन आ जाना।"

"जरूर।" कहता हुआ अविनाश वहाँ से चला गया।

भाभी के कमरे में ही भोजन की व्यवस्था हुयी किन्तु अविनाश की थाली भी भाभी लेती आयीं। मगर वह तो चला गया था। संयोग से उसी समय दया वहाँ आ उपस्थित हुयी। मुझे तो बस मौका मिल गया। मैंने कहा—

"भाभी! दया इतनी देर करके आयी है। इसलिये इसे यही सजा दी जाती है कि अविनाश के लिये लगायी हुयी पूरी की पूरी थाल यह साफ कर दे।"

दया घबड़ाकर बोली—

"छोटे जीजा, मैं खा चुकी हूँ। भला अब कहाँ से दो पेट करने जाऊँ।"

"कुछ नहीं। अविनाश चला गया। उसकी वजह से खाना खराब हुआ। अब तुम उसे खा जाओ। उसकी हर फेल की तुम जिम्मेवार हो।" इतना कहकर मैं मुस्कुराने लगा।

दया शरमा गयी।

भूख से बड़े भाई की आँखें निकली आ रहीं थीं। बोले—

"ठट्ठेबाजी छोड़ो। अब जान जा रही है।"

खा-पीकर हम लोग खाली हुये। भाभी ने भी जाकर तब कुछ खाया और दया ने भी उनका साथ दिया।

पान पत्ते के बाद पलंग पर हम दोनों अलग-अलग आमने-सामने लेट रहे और पास में पड़ी आराम कुर्सियों पर जा विराजीं क्षमा और

दया। मैंने सोचा, अच्छा मौका है, दया-अविनाश का भी मसला आपसी बातचीत से हल हो सके तो इसी वक्त बात क्यों न शुरू कर दी जाय। अविनाश के सहयोग के भार से मैं बहुत ही दब गया था। अतः बोला—

"अच्छा बड़े भाई! आपने आज जिस जीवट और कार्य कुशलता का परिचय दिया है कि जिसकी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। मौका पड़ने पर ही आदमी की परख होती है।"

"करता क्या? आखिर जब तुम जान पर ही खेल जाने को आमादा हो गये तो और कौन-सा चारा था। लेकिन इतने बुलन्द ख्याल वाले आदमी होकर भी तुममें एक बहुत बड़ी कमी है।"

"वह क्या बड़े भाई?"

"जो इतने जिद्दी हो।"

बड़े भाई के आहत मन पर मृदुल शब्दों द्वारा मरहम लेपन करना इसलिये जरूरी मुझे जान पड़ा कि उनसे अभी दया-अविनाश वाले मामले में मदद लेनी थी। इसलिये मैंने मृदुल शब्दों में कहा—

"जरूर बड़े भाई, कभी-कभी ऐसा संगीन कदम उठा लेता हूँ कि बाद में सोचकर बहुत ही दुख होता है। अब यहाँ मैं आप से ही रूठ गया। आप थे कि मान गये, मामले को ढंग से सुलझा डाला लेकिन अगर आज आपकी जगह कोई दूसरा आदमी होता और वह भी अड़ जाता तो क्या नतीजा होता। जरूर गल्ती हुयी। इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।"

"नहीं वैसी कोई खास बात भी नहीं।"

"यह आपकी शालीनता, उदारता और महानता है, जो ऐसा सोचते हैं।"

"लेकिन जो कुछ भी होता है, या हुआ, वह अच्छा ही हुआ।

कालिज का वातावरण किसी भी वक्त बहुत ही गन्दा हो सकता था। अब रामलाल का क्या करना चाहिये।"

"महीना पन्द्रह दिन में उससे इस्तीफा लेकर कहीं और बन्दोबस्त करा दीजियेगा।"

"ऐसा कहते हो जैसे कोई नौकरी मेरे घर ही रक्खी हो।"

"खैर, ऐसी बात तो नहीं लेकिन आप चाहेंगे तो कहीं न कहीं उसका ठिकाना लग ही जायगा। याद है न। वादा कर चुके हैं।"

"अच्छी बात है। हाँ, काशी कब जा रहे हो।"

"यही दो-एक दिन के बाद चला जाऊँगा। अच्छा बड़े भाई, एक अर्ज करना चाहता हूँ।"

"कहो, कहो—" बड़े भाई काफी खुश दिखलायी पड़े।

मैंने कहा—

"दया-अविनाश के मामले पर एक बार आप गौर करें और किसी तरह इसको भी सुलझा डालें।"

"मुझे इसमें क्या करना है?"

मैंने दया को इशारा किया। वह झट बोल बैठी—

"बड़े जीजा, मुझसे नाराज हैं।"

"वाह! यह इलजाम सुनिये। बाबा तुझसे मैं क्यों नाराज होने लगा।"

"यह मैं नहीं जानती लेकिन····" कह कर चुप हो गयी।

अब मैंने सोचा, दया को बोलने देना ठीक नहीं होगा। क्षमा भाभी मौन ही हैं। इसलिये मैं ही बोल बैठा—

"बड़े भाई! यह बच्ची है। इसकी बातों की कोई परवा आप जैसे श्रेष्ठ लोग नहीं करते। जाने दीजिये। अगर कोई भी दिल दुखाने वाली बात इसकी तरफ से हो गयी हो, तो इसे माफ करें।"

"कुछ भी नहीं। बेकार शक कर रही है। माँ जी का कसूर मेरे मत्थे मढ़ना चाहती है।"

"लेकिन इसे आप मानते हैं कि नहीं कि अगर दया-अविनाश में प्रेम हो गया है, दोनों एक दूसरे को खूब जान गये हैं, दोनों का दिल मिल गया है, दोनों एक ही जाति बिरादरी के हैं, तो दोनों को विवाह सूत्र में आबद्ध न करके एक दूसरे को दूर और अलग कर देना बहुत बड़ा अन्याय होगा और ऐसे अन्याय का समर्थक अन्याय-कर्ता से कम दोषभागी नहीं ?"

"पाँच मिनट के लिये मान लो कि जो कुछ भी तुम कह रहे हो, वही सही है लेकिन बूढ़ी माँ का यह फैसला है जिसे वही बना बिगाड़ सकती हैं।"

"बड़े भाई ! आप वह हैं कि हाकिमों का कलम पकड़ लेते हैं और मनमाफिक फैसला लिखवा लेते हैं।"

"अरे भाई ! अदालत की बात और है। वहाँ कानूनी दाँव-पेंच का मामला रहता है और यह है सामाजिक प्लैटफार्म। माँ कहती हैं अविनाश जाति बिरादरी में उनसे छोटा है। खैर धनी नहीं है तो न सही, किन्तु वह ऐसे रास्ते पर लगा है कि लक्ष्मी उसके पीछे-पीछे चलेंगी। लेकिन जाति-बिरादरी का पचड़ा कैसे हल हो ?"

वह राह रास्ते पर आते हुये जान पड़े। इसलिये धीरे-धीरे उनकी खुशामद करते हुये अपनी दलीलों को उनके सामने पेश करना उचित समझ कर मैं बोला—

"बड़े भाई ! आपकी बात बिलकुल सही है लेकिन सोचिये, दोनों की जिन्दगी बरबाद हो जायगी। जिन्दगी भर दोनों तड़पते ही रह जायँगे। कुछ भी न कर सकेंगे। वैसे तो यह है कि प्रेम के सूत्र में बँधे रहने से इनका दाम्पत्य जीवन सुखद पूर्ण ढंग से बीत जायगा।"

"सब कुछ सही है लेकिन बूढ़ी तो आये पहिले रास्ते पर।"

"जरूर, जब कोई बात बिगड़ जाती है तो उसका बनाना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है।"

"बताओ! तुम खुद समझदार हो। फिर तुम उनके स्वभाव से परिचित नहीं।"

"खैर, आप माँ की नस-नस पहचानते हैं न।"

"फिर भी कभी-कभी चूक जाता हूँ।"

"तभी तो कहता हूँ कि आप चाहेंगे तो अविनाश-दया का जीवन सुखमय हो जायगा।"

"कहूँगा और चाहो तो तुम्हारे सामने ही कहूँ।"

"हर्गिज नहीं। अपने ढंग से उन्हें समझाने की कोशिश करेंगे तभी सफलता मिलेगी।"

"अब मुझे भी माँ की पसन्द वाला लड़का जाने क्यों नहीं जँच रहा है। क्यों क्षमा? तुम्हारा क्या ख्याल है?"

वाह! खूब रहा! सूरज जैसे पूरब में उगा। क्या समय ने पलटा खाया। मेरा मन मुस्कुरा रहा था।

क्षमा भाभी ने इसी समय उत्तर देते हुये कहा—

"अविनाश की बात और है। भगवान की कृपा हुयी तो वह आई० ए० एस० में अवश्य ही चुन लिया जायगा किन्तु माँ को समझाना मेरे मान का नहीं।"

"सुन लो, तुम्हारी भाभी भी वही बात कह रही हैं न?"

"भला कभी आप ऐसी-वैसी बातें करते हैं? जरूर, माँ जी कुछ अजीब स्वभाव की हैं।"

क्षमा ने पुनः कहा—

"लेकिन वह किसी के मनाये नहीं मान सकतीं। और अगर कोई थोड़ा बहुत उनपर असर डाल सकता है तो वह और कोई नहीं सिवा तुम्हारे बड़े भैया के।"

"क्यों बड़े भैया ?"

"हाँ थोड़ी बहुत बात जरूर मानती हैं लेकिन अब उनसे रूठने से काम चलेगा और मुझसे यह होगा नहीं।"

"एक रास्ता है ?"

"बता जाओ।"

"आप उन्हें खुश रखे रहिये, धीरे-धीरे असर डालते जाइये और भाभी उनसे इसी बात को लेकर रूठ जायँ।"

"ठीक है। अगर इन दोनों का भला हो जाय तो अपने को क्या ? खुशी ही होगी। लेकिन तुम हो बड़े ही खुराफाती। यहाँ रहे तो एक उपद्रव खड़ा किये थे और यहाँ से जा रहे हो तो दूसरे उपद्रव का प्रसव करके।"

"लेकिन इसमें आपको कम परीशानी उठानी पड़ेगी क्योंकि भाभी का भी आपको सहयोग प्राप्त होगा और उसमें तो आप को अकेले अपने-आप से लड़ना पड़ा, मुझसे लड़ना पड़ा और ऊषा से लड़ना पड़ा। उसमें आप किसी से मदद माँग नहीं सकते थे और न कोई मदद दे ही सकता था। लेकिन यह मामला और ही किस्म का है।" वाक्य पूरा करते-करते दया बोल उठी—

"जीजी, माँजी आ गयीं।"

माँ जी के आते ही कमरे में सन्नाटा छा गया क्षण भर के लिये। सब अपनी-अपनी जगह पर उठ कर खड़े हो गये। उनको अभिवादन किया, आशीरवाद प्राप्त किया। छोटी मेज पर अपना झोला रखती हुयीं उन्होंने क्षमा भाभी से कहा—

"अरे! गोपू कहाँ है। अभी स्कूल से नहीं आया ?"

"नहीं माँ जी।"

"कल तो उसका जन्म दिन है न। क्या इन्तजाम हो रहा है ? सोचा, चल कर देख आऊँ, कैसे क्या कर रक्खा है ? आ, चल कर

देखूँ तो", कहती हुयी भाभी को लेकर वह भंडार गृह में चली गयीं और दया भी उनके साथ ही साथ भीतर गयी।

बड़े भाई बोले—

"यही माँ जी हैं।"

"हूँ।" कह कर मैं मौन होकर बूढ़ी माँ की तस्वीर अपनी आँखों में बना कर सोचने लगा, बूढ़ी है तो खुर्राट, जरूर जिद्दी होगी, लेकिन क्षमा आदि को बेहद मानती है। लाख दो लाख नकदी रुपये भी हैं इसके पास। इसलिये जरा और दिमाग आसमान पर रहता होगा। मनमानी करने की आदत पड़ गयी है। कोई हाथ पकड़ने वाला है नहीं लेकिन क्षमा और बड़े भाई ही इसे सिद्ध करेंगे। अच्छे मौके से आयी। इससे चर्चा छेड़ ही दूँ। लेकिन बड़े भाई से पूछता हूँ तो कहीं इन्होंने मना कर दिया तो मौका नहीं मिलेगा। इसलिये यह दो बात बुरा-भला कहेगी तो सुन लूँगा लेकिन आज बूढ़ी से बातें करूँगा जरूर ही।

भाई साहब भी उस वक्त कमरे के बाहर स्नानघर में चले गये थे। तब तक पाँच मिनट में बुढ़िया अपनी दोनों पुत्रियों सहित उसी कमरे में वापिस लौट आयी और बड़े भाई भी आ गये।

नाम से तो परिचित थीं वह मेरे लेकिन न मैंने उन्हें कभी देखा था और न उन्होंने ही। भाभी ने भीतर बताया होगा मेरे सम्बन्ध में कुछ। तभी इस बार वह कुछ मेरी ओर आकर्षित सी जान पड़ीं। यह मैंने तुरन्त ताड़ लिया। बूढ़ी माँ ने शुरू किया—

"बेटा! तुम आजकल बनारस में ही रहते हो। अपने पक्के साथी को छोड़ दिया?"

"माँजी! क्या बताऊँ रोजी के लिये कहाँ-कहाँ की खाक नहीं छाननी पड़ती इन्सान को। ज्यादा पढ़ा-लिखा होना भी बुरा ही है। छोटा-सा शहर है। और यहाँ ज्यादा पढ़े-लिखे लोगों की तादाद काफी

है। इसलिये सभी के लिये यहाँ कहाँ गुंजायश ? खैर आपने तो वकालत ही करते रहे मगर मेरा मन ही न लगा। ज्यादा पढ़ाई भी बेकार ही है आजकल।"

"देख क्षमा ! सुन ले। अविनाश की पढ़ाई लिखायी के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करती हैं।"

दया मेरा संकेत पाकर दूसरे कमरे में चली गयी। मैंने क्षमा को बोलने नहीं दिया। और स्वयं बीच ही में बोल उठा—

"माँजी, अविनाश बड़ा ही होनहार लड़का है। मैंने उन्हीं दिनों सुना था कि दया और अविनाश का विवाह होना तै हो गया है।"

"बेटा राम राम कहो। फिर कभी ऐसी बात जबान पर न लाना। दया कुँआरी रह जायगी लेकिन भला कभी मैं जीते जी अविनाश के साथ उसे व्याहने जाऊँगी। बात जरूर पहले चली थी लेकिन वह सब खतम हो गयी।"

"लेकिन ऐसा करना नहीं चाहिये—माँजी। दोनों का मन मिल गया है तो आपको आपत्ति न करनी चाहिये।"

"तुम भी कैसी बातें करते हो ? दया को रेल की पटरी पर अपने हाथों बिठाकर इन्जन के नीचे निशान बन जाने दूँगी लेकिन दोनों का विवाह असम्भव।"

"माँजी आप बड़ी हैं लेकिन ज्यादती नहीं करनी चाहिये।"

"तुम कौन होते हो इस बीच में पड़ने वाले ? वाह ! मेरी लड़की इतना अपने मन की हो जाय कि वह एक नीच जाति वाले लड़के से व्याह करने की बात सोचे और तुम्हारे जैसे फिजूल लोग उसे बढ़ावा दें।"

"माँजी आप मुझ पर नाहक नाराज हो रही हैं।"

"मैंने बहुत मुलाहिजा किया। बस इतना ही समझो। मेरा सारा

दिमाग ही बिगाड़ दिया तुमने। यहाँ किस काम से आयी थी और यहाँ क्या बात शुरू हो गयी। अच्छा"—कह कर माँ भाभी की ओर मुड़ीं और बोलीं—

"कल सुबह यहाँ आकर सब इन्तजाम देख जाऊँगी। इस वक्त मैं यहाँ एक मिनट नहीं रुक सकती। अच्छा चली।" कहकर माँ ने झोला उठाया और कमरे से बाहर हो गयीं। क्षमा-उन्हें पहुँचाने दरवाजे तक गयीं और मैंने दया को पुकारा लेकिन कोई जवाब ही नहीं मिला। लौटते ही क्षमा भाभी उस कमरे में किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ सुनकर दौड़ी गयीं और वहाँ जाते ही चिल्ला उठीं।

हम दोनों हड़बड़ा कर दौड़े गये तो देखा कि दया बेहोश पड़ी है। खैर, उसका उपचार हुआ और थोड़ी ही देर में उसे होश आ गया। उसे थोड़ी-सी चोट भी आ गयी थी। खैर, मामूली मलहम पट्टी से काम चल गया।

आध घन्टे में वह पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो गयी। तब उसने कहा—

"माँजी की बातें सुनते-सुनते मैं इतनी उद्विग्न हो उठी कि उनके जाते ही इस कमरे में आकर धड़ाम से गिर पड़ी।"

"तू क्या उनकी बातें सुन रही थी?" मैंने कहा।

"इसी कमरे के दरवाजे से कान सटा कर सारी बातें सुनती रही।"

"लेकिन, दया, इतनी कमजोरी दिखायेगी तो कैसे काम चलेगा। अभी बहुत बड़ी लड़ाई पड़ी ही है। फिर तेरे बड़े जीजा, तेरी मदद करेंगे ही।" कहकर मैं क्षमा की ओर देखते हुये बोला—

"शाम को घर आ रही हो न?"

"हाँ, हाँ।"

"दया को भी लिवाती आना।"

"अच्छी बात है।"

"भूलना नहीं। अच्छा, बड़े भाई, अब आज्ञा दो। देखो आज सुबह से ही घूम फिर कर आप ही के यहाँ हूँ।"

"तो शाम भी सही।"

"नहीं, नहीं", कहकर मैं हाथ जोड़ता, गिड़गिड़ाता हुआ उठा और अभिवादन करता हुआ वहाँ से चलता बना।

रास्ते भर मन ही मन हँसता रहा। बुढ़िया को मैंने खूब चिढ़ा दिया। वह जाने क्या बड़बड़ाती हुयी कमरे से बाहर निकल रही थी। मुझे क्या उससे लेना देना! जो बात साफ साफ थी उसे कह डाला, आदि बातें सोचता हुआ घर की ओर पैदल ही बढ़ा।

१४

सायंकालीन चाय की चुस्की लेता हुआ मैं देवी जी से सारी बातें आद्योपान्त सुना ही रहा था कि बीच में ही यकायक उनसे पूछ बैठा—

"रधिया कब से घर गयी है? आयी नहीं अभी तक।"

"दिन भर से तो यहीं थी। महतो की भी खोज खबर ले आने दीजिये बेचारी को।"

इधर देवी जी चुप हुयीं उधर महतो की बैसाखी की खटखट की आवाज सुनायी पड़ी। मैंने कहा—

"शायद महतो ही बाहर आया है।"

"तब वह भी आती ही होगी।"

इतने में रधिया एक कागज लिये दिये सामने आ ही तो गयी और बोली—

"कालिज का चपरासी अभी यह कागज दे गया है।"

उस कागज को मेरे हाथ में पकड़ा दिया। पढ़ा और हँसता हुआ बोला—

"लो फिर क्या है? कल से काम पर जाना शुरू कर दो।"

देवी जी की ओर देखकर बोला—

"सुना जनाब आपने! आपकी रधिया की नौकरी फिर हो गयी। अच्छा, अब मुझे कुछ इनाम मिलना चाहिये न।"

रधिया ने मुस्काते हुये देवी जी से चुप ही चुप सांकेतिक भाषा में बातें की। अतः स्वयं तो वह बोली नहीं, मेरी देवी जी ही आगे आयीं और उन्होंने कहा—

"जो आज्ञा दें, मैं हाजिर हूँ, रधिया हाजिर है।"

"क्षमा हाजिर है, दया हाजिर है, उषा हाजिर हैं, मेरे लिये होने को तो बहुत से हाजिर हैं लेकिन मुझे कोई मीना बाजार का मज़ा थोड़े ही लेना है। मुझे तो सिर्फ एक से काम है—"

रधिया की ओर देखते हुए कहा—"तू अपनी आँखें जरा आँचल से ढँक तो ले।"—"हाँ," मैं पुनः अपनी देवी जी से कहने लगा—"इधर आओ।"

"कहिये? सुन रही हूँ।"

मैंने उठकर उनके गाल पर एक मुलायम-सा तमाचा लगाकर सते हुये कहा—

"रधिया, अब आँखें खोल दे।"

देवी जी अपनी आदत के कारण मन ही मन सर-पीटती रही होंगी क्योंकि लाज-लिहाज का जितना उन्हें ख्याल रहता है उतना अपने को नहीं। मैंने पुनः उनसे कहा—

"देखना, रधिया खूब मेहनत से अपनी पढ़ाई जारी रक्खे रहना। अरे! एक बात भूल ही गया था। अभी छै बजे तक क्षमा दया

आती होंगी तुम्हें निमन्त्रित करने क्योंकि कल भाभी के बच्चे का जन्म दिवस है न।"

देवी जी कुछ लाल-पीली होती हुयीं बोलीं—

"और याद पड़ा है अभी आपको। मामूली-सी बात थी। इसे आते ही आते मुझसे कह देनी चाहिये थी और आप अब कह रहे हैं लेकिन जो इतना भी कर दिया आपने, वही बड़ी बात हुयी। बिलकुल ही न कहते, या उनको आते ही देखकर कहते तो भी मैं क्या कर सकती थी आपका ?"

मैं मौन ही रहा। उन्होंने रधिया को रुपये दिये, और बहुत-सा सामान बाजार से मँगा भेजा। घर का नौकर पहले ही किसी काम से कहीं भेजा गया था। खैर, देवी जी अपनी घर गृहस्थी सम्भालने में लगीं और वहाँ से उठते हुये उन्होंने कहा—

"बिना खाना खिलाये तो उन्हें जाने न दूँगी ?"

"यह तुम्हारा काम है। तुम जानो।"

"लेकिन हस्तक्षेप करने लगते हैं आप।"

"अच्छा अब से यह न होगा।" अब तुम जाओ अपना काम देखो—और मैं भी जरा पास-पड़ोस से टहल कर आ जाता हूँ।" कहकर दस पाँच मिनट तक मैं जाकर गाँव के सबसे बड़े पीपल के पेड़ के नीचे बने हुये सत्ती माई के चौरा वाले लम्बे-चौड़े चबूतरे पर बैठ गया और पास ही कुछ लड़के कबड्डी खेल रहे थे और कुछ 'सूजा-पाटी', बस यही सब देखने लग गया।

इतने ही में मुझे जैसे किसी बात का ख्याल आ गया कि मैं वहाँ से उठकर झट घर चला आया और देवी जी के समीप जाकर बोला—

"राम भण्डार से कुछ बहुत ही बढ़िया क़िस्म की मिठाइयाँ मँगा लेनी चाहिये थीं।"

बस जैसे देवी जी का मुँह ही उतर गया किन्तु तत्क्षण उन्होंने अपने को सम्भाल लिया और कहा—

"जी, वहीं से मँगाया है।"

"और रसेदार सब्जी—आलू गोभी—की जो बनाना उसमें मसाला उतनी ही मात्रा में डालना जितनी मात्रा में मैंने उस दिन तरकारी बनाते वक्त डाला था। उस दिन की सब्जी कितनी अच्छी बनी थी?"

"उससे अच्छी भी बन सकती है और शायद आज ही लेकिन मैं देखती हूँ कि बिना बोले आप से रहा नहीं जाता। अभी आपने कहा था कि दखल नहीं दूँगा और अभी...."

"हाँ, हाँ, भूल गया, भूल गया, माफ करना। क्या कहूँ मेरी आदत ही कुछ ऐसी पड़ गयी है कि....और आदत का इलाज न आदमी के पास है और न ईश्वर के। उसकी तो पैदाइश साँस के साथ शुरू होती है और साँस टूटने पर ही छूटती है। इसलिये जो चाहो कि मेरी आदत छूट जाय तो मेरे साँस टूटने वाले दिन और क्षण की इन्तजारी करनी होगी।"

"आपके मुँह से सिवाय असगुन के और क्या बातें निकलेंगी। जाइये आप।" कहती हुयी देवी जी तेजी से आँगन, और बरामदा पार करती हुयीं रसोई घर में चली गयीं।

अनायास ही ऐसी बात मेरे मुँह से निकल गयी थी। मुझे पश्चात्ताप हो रहा था। बेचारी कितनी सरल, और साध्वी है लेकिन मैं व्यर्थ में उसे तकलीफ देता रहता हूँ। आँगन से आकर रसोईघर के द्वार पर खड़ा होकर मैं उनके आहत हृदय की पीठ थपथपाने का मौका तलाश करने लगा लेकिन वह अपनी निगाहें नीची किये अपने काम में व्यस्त रहीं। क्षणभर में देखा कि जैसे उन्हें जुकाम हो गया हो और वह नाक सुनकने लगी हों। मैं ताड़ गया। एटम बम का सहारा उन्होंने ले लिया था। उसी वक्त वह रसोई-

घर से निकल कर भण्डारगृह में गयीं। मैं भी पीछे-पीछे लग गया और वहाँ से सामान लेकर जब वह लौट रही थीं कि मैं उनसे टकरा गया। देखा, उनके कपोल आँसुओं से तर हैं किन्तु मुझे देखकर इस तरह झट-पट आँसू पोंछने लग गयीं जैसे कुछ हुआ ही न हो।

क्या करता? एटम का जवाब हाईड्रोजन से देना पड़ा। उनके पास आँसू थे, जिसे उन्होंने लुटा दिया। मेरे पास उससे भी जबर्दस्त चीज थी। वह था प्यार! उसे मैंने उनके कपोलों पर बिछा दिया। चुपके से चुम्बन का चाकलेट खाती खुशी-खुशी हँसती उछलती कमरे में से निकल कर वह अपने काम में लग गयीं और मैं अपने स्टडी रूम में जाकर बैठ रहा।

थोड़ी ही देर में दीया-बत्ती का समय हो गया। मैंने कुछ पढ़ने-लिखने में अपने को उलझाना चाहा कि इतने में आ पहुँचे क्षमा, दया, गोपू और अविनाश।

कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया। सभी का हार्दिक स्वागत किया तुरन्त ही देवी जी को बुलाया। सुनते ही वह हँसती एवं हाथ जोड़ती हुयी आयीं और दया क्षमा गोपू को आदरपूर्वक घर में लिवा गयीं।

लड़के-लड़के मिलकर खेल की बातें करने में लग गये। दो सयानी औरतें अपनी-अपनी घर-गृहस्थी और पति-पुत्र-परिवार की चर्चा में लिपट गयीं। दया दोनों का मुँह ताकने लगी क्योंकि उसकी उमर का कौन था वहाँ लेकिन तब तक रधिया वहाँ आ गयी। इससे दया को भी सहारा मिल गया। यही सब सोचता हुआ सामने बैठे हुये नीची निगाहें किये अविनाश को मैं देख रहा था कि वही बोला—

"दादा, अब?"

"ठहरो।" कहकर भीतर गया और दया को साथ लिवाता आया। वह भी बगल में एक कुर्सी पर बैठ गयी। मैंने ही कहा—

"दया-अविनाश! तुम दोनों संयोग से आज यहाँ उपस्थित

हो। मैं भी हूँ। और कोई यहाँ है नहीं। आज की घटना, अविनाश, तुम्हें मालूम है?"

"जी हाँ, दया का मुँह देखना पड़ता है वर्ना आदमी जब दया-करुणा हृदय से निकाल बाहर कर दे तब उसकी कोई भी समस्या बिना सुलझे नहीं रह सकती।"

"अविनाश! तुम नौजवान हो। होनहार हो। ऐसा न सोचो। दया की माँ बूढ़ी और पुराने ख्याल की हैं। वह तुम्हारी, मेरी सभी की माँ हैं। हाँ, माँ को बिना रास्ते पर लाये तुम दोनों का काम सधेगा नहीं। माँ को नाखुश करोगे तो उस बूढ़ी का जीना मुश्किल हो जायगा। और तुम लोग अगर एक नहीं हो पाते तो मुल्क के बगीचे की मशहूर और कीमती फूल की दो कलियाँ बिना खिले मुरझा जायँगी।"

दया खामोश और गम्भीर बनी बैठी रही। अविनाश ने ही कहा—

"नासमझ जब इसे समझ पायें तब न?"

"उन्हें कोई समझाने वाला मिलेगा तो जरूर ही समझ जायेंगे।"

"लेकिन ऐसा आदमी अभी कोई दिखायी नहीं दे रहा है।"

"घबड़ाओ नहीं। दया के बड़े जीजा तुम दोनों की शादी के लिये कोई भी कोशिश करना बाकी नहीं छोड़ रक्खेंगे। मुझे भरोसा है।"

अब दया ने मुँह खोला—बोली—

"छोटे जीजा, आप उनको जानते नहीं। कोई डण्डा लेकर उन्हें हाँकता रहेगा तभी वे चल सकेंगे।"

"इसके लिये क्षमा भाभी हैं और अब वह वक्त करीब है जब देखोगी कि तुम्हारी क्षमा जीजी तुम्हारे बड़े जीजा का कान पकड़ कर उठायेंगी और बैठायेंगी।"

"मानती हूँ, अब स्थिति बदल गयी है लेकिन जिस मुँह से बड़े जीजा विष उगल चुके हैं यूनियन-प्रेसिडेन्ट के बारे में उसी मुँह से यदि अब प्रशंसा करेंगे तो उसका असर ही क्या होगा ?"

वह अविनाश का नाम कितना बचाकर लेती है। यह भारतीय नारियों के सांस्कृतिक स्वरूप को खूब पहचानती है। बस यहीं से मुझे रास्ता सूझ गया और मैंने कहा—

"दया, निराश न होना चाहिये। फिर हम सबके ऊपर परमात्मा है। क्यों अविनाश ?"

"जरूर दादा।"

यह लड़का भी आस्तिक है। तब ठीक है। मैंने फिर कहा—

"इतना घबड़ाने की क्या जरूरत ? प्रेम परमेश्वर है न। उसी की दोनों पूजा कर रहे हो। तुम दोनों को एक दूसरे से प्रेम है। और उसी के माध्यम से तुम दोनों परमात्मा की पूजा कर रहे हो। खैर, ये बड़ी-बड़ी बातें है। सोचना यह है कि अब मसला कैसे हल हो।"

"जी हाँ।" दया ने कहा।

"उमा और तुम्हारे बड़े जीजा दोनों मिलकर हल कर डालेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है।"

अविनाश ने कहा—

"लेकिन यदि ये लोग हल न कर सके तो आप हम लोगों पर ही समस्या का समाधान छोड़ दीजिये।"

मैं चुप हो गया। नहीं, ऐसा करना ठीक नहीं, शायद बूढ़ी मान ही जाय और अगर न मान सकी तो इन दोनों को दो रास्ते पर जाना चाहिये। मुझे चुप देखकर दया ने कहा—

"प्रेसिडेन्ट की इस बात पर आप चुप क्यों हो गये ?"

"..........." मैं चुप ही रहा।

"क्या यह इतनी गम्भीर बात है कि...."

मैंने गम्भीर स्वरों में कहा—

"दया, अविनाश ! तुम दोनों इसे जितना आसान समझते हो उतना आसान नहीं है। दाम्पत्य जीवन एवं पति-पत्नी के भविष्य का प्रश्न है यह। मैं कह दूँ कि ठोकर मारो माँ को और जंगल, पहाड़, नदी, दर-दर की खाक छानो लैला-मजनूँ बनकर दोनों ? जो इच्छा होकरो ? दोनों सयाने हो और मैं तुम दोनों से काफी सयाना हूँ किन्तु मेरे दिल में शायद जितनी रोमैन्टिक गुदगुदी होगी उतनी सात जनम भी किसी को नसीब नहीं ! मेरे भी दिल है। मैं भी जानता हूँ किसे कहते हैं प्रेम और किसे वासना। पत्थर का नहीं बना हूँ। मेरे मन की आँखों को, काश देख पाते, तो कलेजा मुँह को आ लगता। इन दोनों दिखावटी आँखों के आँसू सूख गये हैं। मेरा मन रो रहा है। याद रखना, तुम दोनों की तबाही शुरू होने के पहले ही मेरी ये दोनों आँखें फूट जायँगी। मैं हृदय से चाहता हूँ कि तुम दोनों एक होकर प्रेम की, सुख की, चैन की जिन्दगी बिताओ लेकिन····मैंने भी प्रेम किया है। रोया हूँ, तड़पा हूँ, बिलखा हूँ। दहाड़ मार-मारकर रोया हूँ। पत्थर पर सिर दे मारा है। जान देने, जान लेने को उतारू हो चुका हूँ। सीने में कटार भोंक लेने, और भोंक देने को तत्पर होकर एक दिन मैं भी निकला था किन्तु ज्यों ही आगे बढ़ा कि किसी ने मेरी कलाई पकड़ ली। उसे बताऊँ ? अभी नहीं। अच्छा, इस लेक्चरबाजी से कोई फायदा नहीं। अविनाश खुद समझदार है। विद्वान मेधावी है। और दया तुम्हें मैं क्या सिखाऊँ ?"

दोनों ने कहा—

"नहीं नहीं, ऐसा न कहिये। आपकी सलाह के बिना····"

"मेरी सलाह अगर तुम दोनों को दो तरफ जाने की हो तो उसे कैसे मानोगे। ऐसी बात न कहो कि जिसे पूरा भी न कर सको।"

दया ने अविनाश से कहा—

"सुन रहे हैं छोटे जीजा की बात।"

"दादा की बात मैं काट नहीं सकता। एक बार कहें तो कुँये में भी कूद सकता हूँ।"

"अविनाश, सचमुच एक दिन तुम इस देश के महान जन नायक होंगे।"

"अरे दादा! आप क्या मुझ जैसी नाचीज को इतना····"

"वाह! जिसमें उत्सर्ग की इतनी भावना कूट कूटकर भरी हो, जो त्याग और सेवा के गुणों से इतना सम्पन्न हो, वह इस दुनिया में क्या नहीं कर सकता? और दया तू....तू तो भारतीय नारी ही ठहरी, जो सदा से अपने सेवा एवं त्याग के सदगुणों से समन्वित होने के कारण पूजनीय रही है।"

दया जैसे कुछ-कुछ समझ रही थी। बोली—

"छोटे जीजा साफ-साफ कहिये। मैं भी थोड़ा-थोड़ा समझती हूँ बातें।"

"देख, बूढ़ी माँ अपनी राय बदलेंगी, क्षमा एवं वकील साहब दोनों खुले दिल से पैरवी करेंगे और तुम दोनों की शादी होगी। इतनी बात करीब-करीब निश्चित है लेकिन यदि यही स्थिति आ जाये कि तुम दोनों को एक दूसरे से अलग ही हो जाना पड़े और बूढ़ी माँ जिद न त्यागें तो इस बूढ़ी को तंग न करना। कुर्बान हो जाना। बस।"

दोनों ने हाँ कहा सम्मिलित स्वरों में और चुप हो रहे। मैंने भी छाती पर सिल रखकर ही इन बातों को मुँह से निकाला था लेकिन क्या करता?

दोनों की आँखें भर आयीं थीं। इसी समय अविनाश यकायक उठा और कमरे से निकल कर जरा मकान के बाहर जाने लगा। मैंने टोका तो उसने कहा कि अभी एक मिनट में आ रहा हूँ।

एक मिनट, दो मिनट, पाँच मिनट बीत गये लेकिन अविनाश नहीं लौटा। मैं कमरे से बाहर निकला। वह मकान के सामने भी नहीं मिला—दस-पाँच कदम बढ़ कर वहाँ तक गया जहाँ से सड़क शुरू होती थी और मेरे मकानों के सामने वाला सहन खतम होता था। वहीं मिला सुखई जो रधिया की टोह लेने घर की तरफ चला आ रहा था। उसी ने बताया कि एक रिक्शा अभी यहाँ से गया है। कोई उसमें बैठा जरूर था।

मैं वापिस लौट आया। मेरे मन को गहरा धक्का लगा। तबतक दया को देवी जी ने घर में बुला लिया था। मैं चुपचाप कमरे में बैठकर सोचने लगा, व्यर्थ में मैंने उसे ऐसी सलाह दी। नौजवानों का कौन चलाना। जाकर कोई उल्टा-सीधा काम ही कर बैठे ? मेरी रूह काँप उठी। कहाँ देखूँ, कहाँ गया वह लेकिन ऐसा करते देखकर दया क्षमा वगैरह घबड़ा जाँयगी। तब तक अविनाश और मुझे खाने के लिया बुलाया ही गया। अब मुसीबत आयी। क्या जबाब दूँ ?

भीतर जाते ही मैंने दया से कहा—

"क्यों तू कब चली आयी ?"

"बस आपके जाने के बाद। वह कहाँ गये ?"

"उसके युनिवर्सिटी के कुछ दोस्त यहाँ दिन में घूमने आये थे। वे ही सब उसे पकड़ ले गये हैं। कहा है कि मौका मिला तो आऊँगा वर्ना कल सुबह भेंट होगी।"

देवी जी उसी वक्त अपनी बात लेकर उठ गयीं।

बोलीं—

"आपने क्यों जाने दिया ? उसके दोस्त भी खा सकते थे। अन्नपूर्णा का भण्डार कभी खाली हो सकता है। क्या चला ही गया ?"

"हाँ।"

"अच्छा, यदि आपको भूख लगी हो तो खालें, नहीं तो हम और आप साथ-साथ खायँगे।"

"यही ज्यादा अच्छा होगा। मुझे अभी भूख भी नहीं लगी है। अभी मुश्किल से आठ बजते होंगे।"

बस इतना सुनना था कि क्षमा भाभी हड़बड़ा कर उठने की चेष्टा करने लगीं—और बोलीं—

"जो कुछ खिलाना हो, खिला दो। नहीं तो बड़ी देर हो जायगी।"

मैं वापिस आकर अपने कमरे में बैठकर अविनाश के बारे में सोचने लगा और उधर देवियों की दावत चल रही थी।

थोड़ी देर में खा पीकर दया, क्षमा, गोपू तीनों मेरी देवी जी सहित मेरे कमरे में आये। मैंने तबतक उनके लिये रिक्शा मँगवा दिया था। गोपू के गाल पर चपत लगाते हुये उसके नमस्कार का जवाब दिया। भाभी को प्रणाम किया और दया की पीठ थपथपा कर उसे आशीरवाद दिया। और कमरे में ही बैठा रह गया। मेरी देवी जी रिक्शे तक पहुँचाने चली गयीं। और जब लौटीं तो उन्होंने जैसे किसी गम्भीर मुद्रा में मुझे देखकर कहा—

"क्या बात है? कोई प्लाट सोच रहे हैं!"

"नहीं, उसका अन्त।"

"लेकिन कहानी का कहीं अन्त भी होता है?"

"तुम भी खूब कहती हो।"

"मुझ में इतना शऊर कहाँ लेकिन आपको ही ऐसा कहते हुये मैंने सुना था कभी।"

"अच्छा, हटाओ इन बातों को। बस कुछ खिलापिला के मुझे सुला दो।"

"वाह रे बूढ़े बच्चे!"

"तब न हो, चलिये पलंग पर ही आराम कीजिये। और सोये-

सोये ही मेरे हाथों से भोजन कर लीजिये। लेकिन....खैर कोई देखेगा नहीं।"

"कोई देखे न तो क्या समझती हो कि तुम्हारी यह हरकत छिपी रह जायगी। मैं ही इसका प्रचार कर सकता हूँ।"

"महाराज! हाथ जोड़ती हूँ। मैं हारी। आप जीते। आपका क्या चलाना! अपनी किताबों के पन्नों को इन्हीं बातों से रंगने लग जाँय तब तो मेरी लुटिया ही डूब जायगी। लोग सोचेंगे, कैसी स्त्री है? अच्छा, उठिये या हाथ लगाना पड़ेगा।"

"नहीं-नहीं। चलता हूँ।" कहकर अन्दर गया और प्रेम से भोजन किया किन्तु भोजन की मात्रा तिहाई ही रही।

सोते-सोते देवीजी पड़ गई न मेरे पीछे। इतना अच्छा खाना बना लेकिन आपने खाया क्यों बहुत कम? इनसे पार पाना मुश्किल है। इनसे कोईबात छिपाकर मैं जिन्दा नहीं रह सकता। सोचा, नहीं निश्चय किया कि सारी बातें विस्तार पूर्वक इनको सुना जाऊँ कि उसी वक्त किसी ने बाहर से मुझे पुकारा। लिहाफ को किनारे फेंक नंगे बदन बाहर निकल आया तो देखा कि तार वाला आया है। मेरे नाम कोई तार ले आया था। तार का लिफाफा लिया, दस्तखत बनाया और घर में वापिस लौट गया। लेकिन बीच ही में देवी जी मिल गयीं। तार का नाम सुनकर वह घबड़ा जाती थीं। खैर, उसे पढ़ा। कोई खराब बात नहीं थी। तसल्ली हुयी।

बात यह थी कि विदेश जाकर विशेष अध्ययन करने के लिये मेरे एक परम मित्र को सरकार से छात्रवृत्ति मिली थी वे दूसरे ही दिन सुबह प्लेन से दिल्ली जाने वाले थे तथा वहाँ से बाम्बे होते हुये विदेश यात्रा करने का प्रोग्राम बना चुके थे। तीन सालके लिये बाहर जा रहे थे। भला मैं कब रुक सकता था। बस देवी जी को सारी बातें समझा कर अपना सभी कागज पत्र सम्भाला और थोड़ा-सा सामान भी—क्यों कि

यहाँ सिर्फ दो रोज के लिये बतौर मेहमान के आया था और लग गया आठ दस रोज। फिर अपना सारा सामान भी कल्याणी के ही यहाँ था। खन्ना जी के यहाँ कल चली जाना, भूलना नहीं, इतना और देवी जी को सहेज समझा कर मैं घर से निकला और दस बजे रात उस बस्ती-नुमा आबादी में कहाँ कोई रिक्शा मिलता, पैदल ही चला लेकिन मुख्य सड़क पर एक रिक्शा मिल ही गया। उसी वक्त एक मेल ट्रेन मुगलसराय जाती थी। उसी से मुझे जाना है, इसलिये वही गाड़ी मुझे मिला दोगे तो तुम्हें किराया के ऊपर एक चवन्नी देंगे। मैंने जो इतना बढ़ावा दिया कि वह रिक्शा वाला मुझे लेकर सचमुच ही उड़ चला।

१५

"भैया, आप हम लोगों को जीने नहीं देंगे।" कल्याणी ने नाराज होकर कहा।

"मैं क्या करता हूँ।"

"सब जाते हैं बाहर, हफ्ते दो हफ्ते, महीने दो महीने के बाद लौट ही आते हैं और अपना दर पता भी देते रहते हैं, पत्र-व्यवहार बनाये रखते हैं लेकिन जनवरी से जुलाई: कुल छै महीने हुये आपको बम्बई-कलकत्ता एक करते और इस बीच में मुश्किल से आपके तीन चार पत्र मुझे मिले। आपको बस दो ही एक दिन में मेरे साथ घर चलना होगा। मेरी भाभी बेचारी रोते-रोते पागल होती जा रही है और आप को सूझी है....क्या....कहें।"

"कल्याणी, जरूर गल्ती हुयी। मैं मानता हूँ और तुम्हारी भाभी से तो मुझे इतना डर लग रहा है कि कैसे उनके सामने जाऊँ?"

"वह कोई कटाऊँ थोड़े ही हैं।"

"तुम साथ रहोगी तो जरा उनका रोना-धोना कम रहेगा। वर्ना अकेले पाकर तो मेरा हलुआ बना डालेंगी।"

"पाये हैं इतनी सीधी पत्नी तभी आपको इतनी बातें आ रही हैं। कहीं मिली होती कोई तीखे और तेज मिजाज़ वाली तो पता चलता।"

"सिर्फ मेरा ही नहीं। तुम्हारी भी खूब न खातिर करती।"

"अच्छा बातें न बनाइये, तै कीजिये घर चलने का प्रोग्राम।"

"क्या जंगल में हैं ?"

"जी नहीं, आपको जल्द से जल्द घर चलना होगा। रधिया आकर रो रही थी। वही भाभी का सन्देशा लायी थी।"

"वह पाजी तुम्हारे यहाँ तक चढ़ आयी ?"

"वह आपको जंगल में से खोज निकाले। उसे आप क्या समझते हैं ? प्राइवेट इम्तहान देकर फर्स्ट डिविजन सेकन्ड पोज़िशन मारा है ! उसने अपर मिडिल में....." बस इसी समय मेरे द्वादशवर्षीय भान्जे विनय बाबू ने आकर हँसते हुये कहा—

"मामा चलो बैठक में। दो जने आपसे मिलने आये हैं।"

"कौन हैं बेटा ? पूछा नहीं ? और इस वक्त सुबह-सुबह....."

"बस आप उठ ही दीजिये।" कहकर वह इस ढंग से हँसने लगा जैसे वह मुझे तंग करके मजे लेना चाहता हो। मैंने कहा—

"बेटा, सच सच बतादो। कोई आया हो तो चलें वर्ना व्यर्थ परीशान करने से क्या फायदा ?"

वह कुछ नहीं बोला बल्कि और हँसने लगा। मैंने कहा—

"जरूर तुम मजाक ही कर रहे हो।"

"नहीं मामाजी, मजाक की बात नहीं। घर से वे लोग आये हैं।"

"चलो भाई।"

वह अब जरा तेज पड़ा। उसने कहा—

"आप समझते हैं कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। चलकर देख न लीजिये।"

देखा, एक जोड़ा नौजवान मर्द और औरत दूसरी तरफ मुँह किये बैठे हैं। मैं थोड़ा चकित जरूर हुआ लेकिन दया और अविनाश का चेहरा सामने आते ही प्रसन्नता से उछल पड़ा। दोनों कुर्सी से उठे। दोनों ने झुककर मेरे चरण स्पर्श किये। दोनों को अपने हृदय से लगाकर आशीरवाद देते हुये बोला—

"चलो, चलो ऊपर। अभी कल ही तो मैं बाहर से आया हूँ।"

दया ने तुरन्त ही उत्तर देते हुये कहा—

"छोटे जीजा! मझधार में हम लोगों को अकेला छोड़कर नाव पर से कूदकर जो भागे कि बाद में जरा-सा खोज खबर तक नहीं लिया।"

"चल, चल, ऊपर सारी बातें बताता हूँ।" कहता हुआ उन्हें ऊपर ले आया।

कल्याणी ने तुरन्त उनके जलपान की सुन्दर व्यवस्था कर डाली तथा उन दोनों नवागन्तुकों का परिचय प्राप्तकर लड़कों को स्कूल भेजने के लिये उन्हें तैयार करने नीचे चली गयीं।

मैंने उन्हें तारवाली बात बताकर इत्मिनान दिला दिया कि जान-बूझकर या जान बचाने की गरज से थोड़े ही मैं इतनी जल्दी रात ही बनारस के लिये रवाना हो गया था। काम की जरूरत ही ऐसी आ पड़ी थी। इसके पश्चात् दया ने पूछा—

"लेकिन छै महीने तक हम लोगों को कोई समाचार क्यों नहीं दिया गया?"

"सुनो, कल्याणी को इस बीच मैं सिर्फ तीन पत्र भेज पाया। घर पर एक या दो पत्र भेजा था। पता निश्चित नहीं रहता था। इसलिये तुम लोगों की भी खबर नहीं मिल सकी। सोचो, चार छै रोज से ज्यादा

कहीं भी नहीं रुकता रहा। देश के पचासों जिलों, शहरों की खाक छान डाली। अपने देश को जानना जरूरी है। मेरा यही काम ही है। आखिर रोटी दाल का ठिकाना बनाये रखने को हर किसी को कुछ न कुछ करना पड़ता ही है। सिर्फ किताबों से ही उपन्यास या कहानी के मसाले तो नहीं मिलते। खैर, जरूर गल्ती हुयी। अच्छा, और कह चलो। तुम दोनों""इतने में मेरी निगाह दया के सिन्दूर भरे माँग पर जाकर रुक गयी। चुप हो रहा। सोचा, दोनों की मनोकामना सफल हो गयी क्या? अब मैंने उनसे पूछा—

"क्यों किस महीने में शादी हुयी?"

"मई में।" अविनाश ने कहा।

"और मेरी जून में।" दया ने कहा और चेहरे पर गम्भीरता का बुर्का डाल लिया। लेकिन अविनाश के चेहरे पर हँसी थिरकने लग गयी थी। इसलिये दया की शरारत मैं भाँप गया। हँसते हुये बोला—

"बोली बोल रही है?"

"अवश्य छोटे जीजा।" अब वह भी मुस्कुराने लगी।

"मैं खूब समझता हूँ।" कहकर मैं गम्भीर हो गया।

"छोटे जीजा नाराज हो गये क्या? सब कुछ आप के ही आशीरवाद का प्रतिफल है।"

"तभी मिठाई के बदले मुझे ताने मिल रहे हैं।"

इतने में मिठाई की बड़ी सी पिटारी दया सामने टेबुल पर रखती हुयी बोली—

"इसे बच्चों के लिये नीचे भिजवा दीजिये।"

"दया तुझे तो बड़ा शऊर आ गया। वाह रे वाह! अच्छा-अच्छा! चला जायगा। अविनाश रात में यकायक मेरे कमरे से उठ कर चले क्यों गये थे?"

"मुझे उस वक्त बड़े जोरों की रुलाई छूट रही थी। बैठा रह जाता

तो इतने जोरों से फूट-फूट कर रोने लगता कि दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो जाता। कितनी शरम की बात होती। यही महसूस कर मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ। सोचा था, सुबह मिल लूँगा लेकिन तब तक आप चले ही गये थे। एक हफ्ते के बाद काशी आया तो पता चला आप हैदराबाद की तरफ चले गये हैं। निराश होकर घर लौट आया।"

"और तब से तुम्हीं अकेले स्थितियों से संघर्ष करते रहे?"

"नहीं, लड़ाई में दया मेरा पूरा-पूरा साथ देती रही और सबसे बड़ी बात जो हुयी वह यह कि खन्ना जी आपके बड़े भैया खुलकर मेरी मदद करने को मैदान में उतर आये। अगर वह कभी थक भी जाते, कभी हतोत्साहित भी होते तो आप की क्षमा भाभी बराबर उन्हें प्रेरित किया करतीं। क्षमा भाभी यही कहतीं कि मैंने वात दे दिया है, मेरी जबान न कटने पाये चाहे मेरी गरदन कट जाये। शायद आपने उनसे वादा करा लिया था। बार-बार वह मुझसे यही कहतीं थीं कि यदि तुम दोनों की शादी न हो सकी तो मैं दया के छोटे जीजा को क्या मुँह दिखाऊँगी? उन्होंने मेरी उजड़ी दुनिया बसायी है। इतना भी न कर सकी तो मेरे लिये डूब मरना ज्यादा अच्छा होगा। बस, दादा, भाभी ने तो कमाल ही कर डाला। रातभर वह भैया की क्रियाशीलता रूपी मशीन में चाबी दिया करती थीं और दिन भर वह मशीन बेतहाशा दौड़ती-फिरती थी। बड़ी लम्बी कहानी हो गयी थी। एक नहीं अनेक रुकावटें ऐसी-ऐसी आकर सामने खड़ी हो जातीं रहीं कि पैर का पसीना सिर पर आ जाता था। लेकिन खन्ना जी की सक्रियता एवं भाभी की हार्दिक सदभावना ने हम लोगों को बिछुड़ते बिछुड़ते भी लाकर मिला ही दिया और इस तरह माँ की जिद पर विजय प्राप्त हुयी।"

"माँ के हृदय की कमजोरी का फायदा तुम लोगों ने आखिर उठाया ही। माँ की ममता जाग्रत की होगी। क्यों? यही बात न?"

"सेन्ट पर सेन्ट यही। बात यह हुयी कि हम लोगों को मालूम था नहीं कि माता की सबसे कमजोर जगह, जहाँ चोट की जाय, कौन है, कौन नहीं। लेकिन आपकी क्षमा भाभी की प्रतिभा अद्भुत है। उन्हीं के बताये हुये रास्ते पर चल कर हमें कामयाबी हासिल हुयी और आज इस रूप में हमें आपके समक्ष उपस्थित होने का अवसर मिल सका।"

दया ने बात काटते हुये कहा—

"प्रेसिडेन्ट! इस बात को क्यों भूल जाते हो कि क्षमा जीजी को भी प्रेरित करनेवाला कोई और था? बताऊँ कौन? मेरे छोटे जीजा।"

"नहीं-नहीं, तुम दोनों का प्रेम सच्चा था। न मैं, न क्षमा, न खन्ना, कोई नहीं।"

दोनों सम्मिलित स्वर में बोले—

"सारा श्रेय है आपकी शुभकामना एवं शुभाशीस को।"

"खैर यही सही। लेकिन मुझे क्या मिल रहा है इसके बदले?"

"हम दोनों का शरीर, दोनों की सेवा आपके लिये हमेशा हाजिर है।"

"शरीर और सेवा को लेकर क्या करूँगा?"

दया ने कहा—

"जब कभी अगर कहीं फिर मोर्चेबन्दी का काम पड़ जाय, अनशन वगैरह की लड़ाई छिड़ जाय तो अब से एक नहीं दो दो प्राणियों की सेवा आपके चरणों में....।"

"क्या जिन्दगी भर यही काम रह गया है। हाँ, रधिया तो बड़े अच्छे नम्बरों से पास हुयी न।"

"बड़ी ही जहीन है।" दया ने कहा।

"लेकिन मेरी आकांक्षा कम से कम उसे अध्यापिका के रूप में देखने की है। बड़े भाई, गोपू, भाभी, माँ जी, सभी मजे में हैं न?"

"जी हाँ।"

"क्यों दया? बड़े जीजा और जीजी में अब सब ठीक रहता है न।" वह समझ गयी तुरन्त। हँसती हुयी बोली—

"अब क्या पूछना है? बड़े आनन्द से दिन बीत रहे हैं जीजा-जीजी के।"

"तुझे तो कभी नहीं छेड़ते?"

वह शरमा गयी किन्तु इधर कुछ 'बोलता' ज्यादा हो गयी थी। अतः सुनिये, उसने क्या कहा—

"बड़े जीजा से शादी के बाद मैंने कह दिया 'नोवैकेन्सी'।"

"तू बड़ी ही शरारती है।"

दया और अविनाश दोनों हँसने लगे। मैं भी उसी में शामिल हो गया। फिर मैंने पूछा—

"कालिज की व्यवस्था कैसी है?"

"क्या पूछना है? वाइसप्रिन्सिपल को ही कमेटी ने प्रिन्सिपल बनाकर उन्हें ही 'कनफर्म' कर दिया। कालिज का रेजल्ट बहुत ही बढ़िया रहा।"

"अच्छा, अच्छा, हाँ, ख्याल आ गया। अविनाश तुम्हारे दोस्त का क्या हाल है?"

"कौन दादा?"

"वही रामलाल।"

"ओह! हाँ, उसे भैया ने एक मिल के आफिस में काम दिला दिया और अब बड़े ढंग से वह भी जीवन यापन कर रहा है।"

"मेरे यहाँ का समाचार...."

"जी, आपके आने का समाचार शाम को तार द्वारा यहीं से मिला। और हम दोनों आपको लिवाने ही यहाँ आये हैं और साथ में आपको लेकर चलेंगे।"

"मैं स्वयं कल्याणी के साथ दो-एक रोज में आने ही वाला था। यकीन न हो तो पूछ लो।"

इसी समय कल्याणी भी वहाँ आ पहुँची। उससे दया ने मुस्कुराते हुए कहा—

"दीदी, हम दोनों छोटे जीजा की विदाई के लिये ही आये हैं। बड़े बब्बा ही आते मगर उनको कुछ जरूरी काम था। फिर हम लोग भी एक रोज यहाँ आकर सारनाथ के नवीन परिवर्तनों को देखना चाहते थे। सोचा, दोनों काम एक ही साथ हो जायगा।"

"ठीक तो है भैया। कल सुबह मैं भी चली चलूँगी। आज अभी दोपहर में सारनाथ जाकर घूम आओ। न हो, भैया आप भी चले जायँ।"

"हाँ, हाँ—ठीक है। लेकिन अब तुम लोग जरा आराम से बैठो। सफर के थके माँदे...."

"जी नहीं, मेरे एक दोस्त आ रहे थे यहीं। उन्हीं की कार से हम लोग साढ़े पाँच बजे सुबह वहाँ से चले और सात बजे आपके दरवाजे हाजिर हो गये।"

"फिर भी नहाना-धोना खाना-पीना आराम...."

"होगा न यह सब...."

कल्याणी दया को लेकर नीचे जनान खाने में, चली गयी और मेरे बड़े भान्जे साहब अविनाश को स्नानगृह की ओर लिवा गये और मैं अकेला विचारों में निमग्न वहीं बैठा रहा....

※ बस ※